मानव मन्दिर

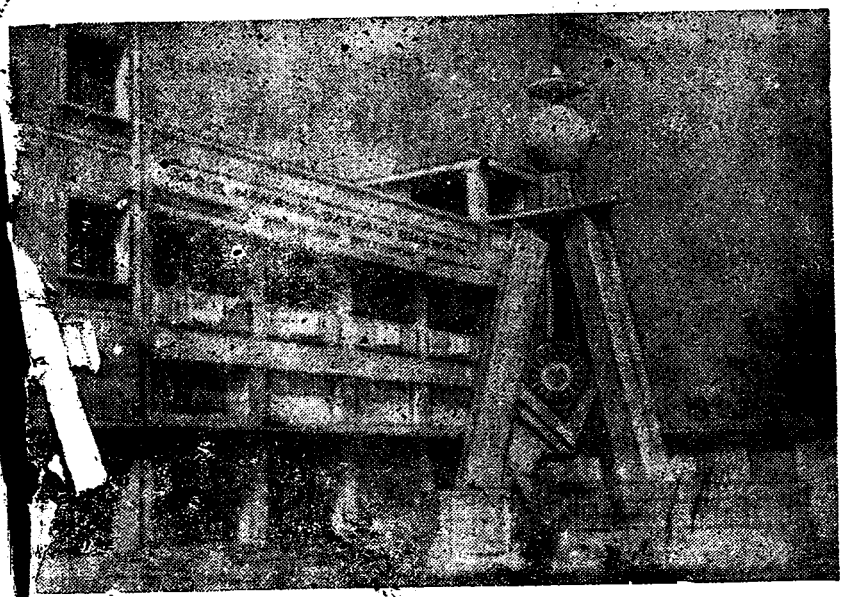

फकीर लायब्रेरी चैरीटेबल ट्रस्ट
सुतेहरी रोड, होशियारपुर
द्वारा अमूल्य भेंट
संस्थापक: परम संत परम दयाल पं: फकीर चन्द जी महाराज

FORM I

(See Rule 8)

Place of Publication	Hoshiarpur
Date of Publication	10th of every month
Periodicity of Publication	Monthly
Printer's Name	Dr. Paras Ram Aggarwal
Nationality	Indian
Address	Manavta Mandir. Hoshiarpur
Editor's Neme	Dr. Paras Ram Aggarwal
Nationality	Indian
Address	Manavta Mandir, Sutehri Road, Hoshiarpur.
Name and address of individuals, who own the Manav Mandir of partners of shareholders, holding more than one Percent of the tetal capital	- Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

I, Dr. Paras Ram Aggarwal hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

Dated : 10-3-86 Signature of Publisher

Printed and Published by: Dr. Paras Ram at Shiv Dev Rao Press. Manavta Mandir Hoshirapur, for the Faqir Library Charitable Trust, Hoshiarpur.

मानवता मन्दिर में अगला मासिक सत्संग
25-3-86 को होगा।

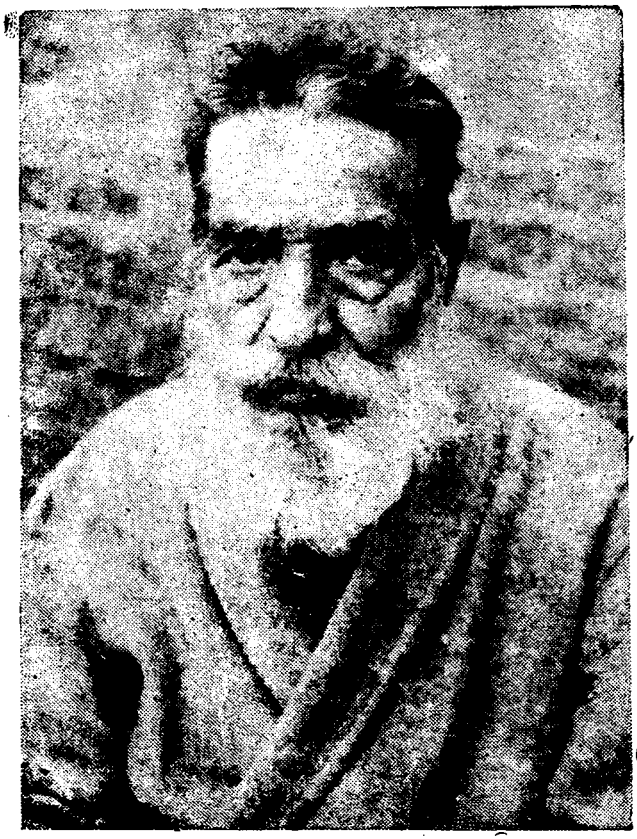

Param Sant Param Dayal Faqir Chand Ji Maharaj

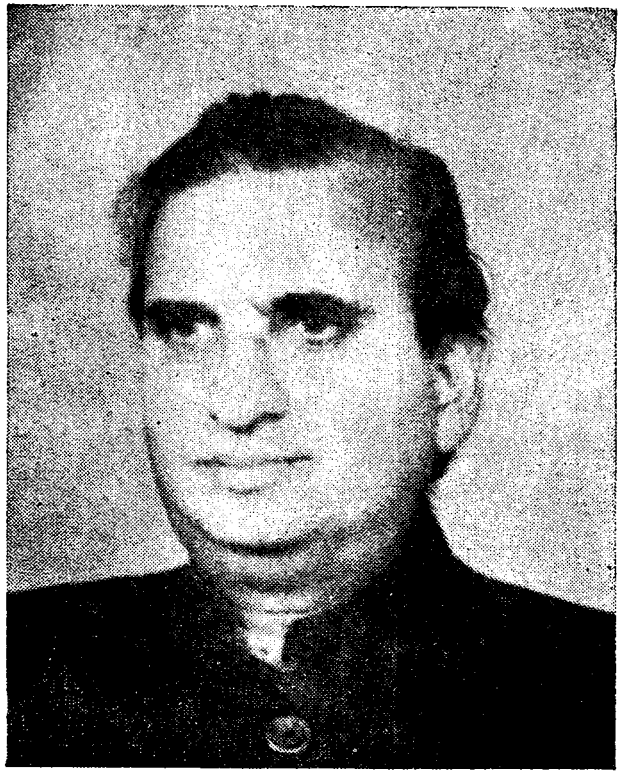

Param Sant Manav Dayal Dr. I. C. Sharma Ji Maharaj

मासिक -

मानव मन्दिर

विश्व में मानव मात्र के सामाजिक सांस्कृतिक
और आध्यात्मिक कल्याण और विकास की
सेवा में संलग्न मासिक पत्र

सम्पादक :
डा० परस राम अग्रवाल

वर्ष 13	शनिवार 10 मई 1986	संख्या 1

सत्संग हजूर दाता दयाल महर्षि शिवव्रत लाल जी महाराज

राम और रामायण

राम हिन्दुओं के खास अवतार समझे जाते हैं और हैं भी। हिन्दुओं का एक बच्चा भी ऐसा नहीं होगा जो चौबीस घण्टों में राम का नाम दो-चार बार न लेता हो। बहुत से लोग प्रभात काल में राम नाम का जाप करते हैं। कुछ लोग नहाते वक़्त राम-राम कहा करते हैं, यहां तक कि जब किसी से कोई बुरा काम भी हो जाता है तब भी लोग अफ़सोस और पश्चात्ताप के रूप में कहते हैं "राम-राम! ऐसा नहीं चाहिए था। यह इस नाम की अजमत (महानता) का स्पष्ट सबूत है जो आज तक किसी न किसी सूरत में लोगों के दिलों में मौजूद है। राम के कारनामों से धार्मिक पुस्तकें भरी पड़ी हैं। विशेषकर रामायण प्रारम्भ से अन्त तक उन्हीं की महानता का गीत गाती है। सबसे पहले वाल्मीकि जी ने संस्कृत भाषा में रामायण लिखी। हनुमान जी ने हनुमान-चरित्र का गाना सुनाया। व्यास जी ने भागवत और महाभारत में भी इन्हीं के बारे में कहा। इस किस्म के अनगिनत रामायण संस्कृत भाषा में हैं। गोस्वामी तुलसी दास जी ने सारी ज़िन्दगी रामायण की कथा लोगों को सुनाई।

बीसियों रामायण लिखी गई हैं परन्तु सबसे अधिक प्रसिद्ध 'राम चरित मानस' है। महाराज रघुराज सिंह साहिब रीवा नरेश ने 'राम-स्वयंवर' के नाम से एक बहुत बड़ी किताब लिखी। पारसी भाषा में मिर्ज़ा बेदिल, अलामा फ़ैज़ी, मुल्ला मसीह और कुछ कायस्थ बुजुर्गों ने इस विषय पर बहुत रोशनी डाली। मद्रासी, बंगाली, गुजराती, मराठी, तामिल, तेलुगु, मलयालम, उड़िया, बिहारी, पाली, पूर्वी, मारवाड़ी यानि भारतवर्ष की हर भाषा में रामायण लिखी गई परन्तु कई संस्करण अब देखने में ज़रा कम आते हैं। पूर्विये जिनको आम तौर पर लोग कम-अक्ल और देहाती कहते हैं वो भी आल्हा रामायण बड़े शौक से गाते हैं। अंग्रेज़ी में मि. ग्रिफिथ (Griffith), की रमेश चन्द्र दत्त और हनुमन्त नाथ दत्त ने भी बहुत अच्छे रामायण लिखे। उर्दू भाषा में खुशतर, फ़रहत, उपक और तमन्ना ने बहुत मेहनत से काम किया। मैंने पंजाब के दौरे में कई रामायणें लिखी हैं जो अब भी पंजाब में मिल सकती हैं। स्व. श्री मुन्शी सूरज नारायण साहिब ने भी बड़ी मेहनत के साथ रामायण का खास नमूना लिखकर पेश किया है। किसी-किसी ने सच्ची रामायण, चम्पू रामायण, रामकलेवा, रामाश्वमेध, राम-स्वयंवर, लंकादहन और राम वनवास इत्यादि किताबें लिखीं। इन सब की सूची लिखना मुश्किल काम है परन्तु रामायण की इतनी पुस्तकें होने के बावजूद नतीजा क्या हुआ। इसे भी ज़रा सोच देखिये। इनके मतलब और भाव पर कोई ध्यान नहीं देता :—

'कुछ ऐसे सोये हैं सोने वाले कि जागना हश्र तक क़सम है'।

हर साल दशहरे के अवसर पर रामचन्द्र जी के जीवन के कारनामे दिखाये जाते हैं परन्तु कितने मनुष्य हैं जो इनसे शिक्षा लेकर कुछ लाभ उठाते हैं? बाल-बच्चों

के साथ तमाशा देखने गये, खिलौने खरीदे, मिठाइयाँ लीं, इधर-उधर देखा-भाला, दुकानों की सैर की और घूम-फिर कर वापिस घर पहुँच गये। कम से कम बच्चों को ऐसे मौके पर यह भी नहीं बताया जाता कि रामचन्द्र जी कौन थे, उनके कारनामे क्या हैं और उनसे क्या शिक्षा लेनी चाहिए इत्यादि-इत्यादि।

आज हम अपने पढ़ने वालों को लाभदायक बातें चुन कर पेश करते हैं। अगर वो ध्यान से पढ़ेंगे तो उनका भला होगा न पढ़ेंगे तो मुझे कुछ शिकायत भी नहीं है। मैं तो अपना फर्ज़ अदा कर देता हूँ।

'मानो न मानो इसका तुम्हें अख्तियार है।
हम नेकी बद हमेशा ही समझाये जाते हैं॥'

रामायण से भाइयों को शिक्षा

लक्ष्मण जी ने अपनी नई-नवेली स्त्री को छोड़ा, माता-पिता के प्रेम से मुँह मोड़ा, संसार के ऐशो-आराम को पाँव से ठुकराया परन्तु अन्त तक राम का साथ दिया। युद्ध में वो कारनामे दिखाये कि शायद ही कहीं देखने को मिलेंगे। उन्होंने अपने आपको राम का शक्तिशाली बाज़ साबित कर दिखाया। भरत ने राजा होते हुए भी बड़े भाई के ख्याल से साधुओं की तरह जीवन व्यतीत किया। राजगद्दी के मालिक होते हुए भी रामचन्द्र जी की खड़ाउओं को सिंहासन पर रखकर अपने आपको उनका सेवक समझते रहे। चौदह वर्ष तक भक्ति का ऐसा जीवन व्यतीत किया जिससे बच्चा-बच्चा भी वाकिफ़ है। लक्ष्मण जी ने सबसे पहले अपने आपको भाई के ऊपर कुर्बान कर दिया। बाकी तीन भाइयों ने गुप्तार घाट में जल-समाधि ले ली। जीवन में भी साथ दिया और मौत में भी पीछे क़दम नहीं हटाया।

यह भाई के साथ सलूक करने का आदर्श है। आजकल के भाइयों की हालत ज़रा ग़ौर से देखो तो पता लग जाये कि ज़मीन-आसमान का अन्तर है या नहीं :—

भाग इन बदफ़रोशों से कहाँ के भाई।
बेच ही डालें जो यूसुफ़ सा बरादर होवे॥

ऐ हिन्दुओ! रामायण से भाइयों की मोहब्बत का सबक सीखो और अपने आदर्श के पद-चिन्हों पर चलकर अपने बुजुर्गों के नाम को रोशन करो। ऋषियों के नाम को बदनाम न करो। ज़रा-ज़रा सी बात पर भाइयों का गला न काटो और न ही उनका अधिकार छीनो। तुम ऋषियों की सन्तान हो तो वैसे ही काम करो ताकि किसी को तुम्हारी ओर उंगली उठाने का अवसर न मिले।

नवयुवकों को शिक्षा

रामचन्द्र जी लक्ष्मण और सीता जी के साथ जंगल को निकल गये। साथ में न धन है, न मुल्क है, न फौज है, न नौकर-चाकर हैं और न कपड़े-लत्ते। केवल सदाचरण की दौलत उस वक्त उनके पास थी। चौदह वर्ष तक मुसीबत का जीवन गुज़ारा परन्तु चेहरे पर शिकन तक नहीं आई। मन में कभी भी कमज़ोरी नहीं आई। वह अपने पवित्र जीवन और सदाचरण पर पर्वत की तरह अटल रहे। उन्होंने अपनी बुद्धिमानी से बन्दरों और रीछों को फौजी शिक्षा देकर काफी बड़ी फौज तैयार कर ली और संसार की सबसे बड़ी शक्ति को युद्ध में पराजित कर ख़ाक में मिला दिया। रावण, कुम्भकर्ण और मेघनाद को उनका लोहा मानना पड़ा। ऐसा युद्ध हुआ कि जिसका उदाहरण मुश्किल से ही कहीं नज़र आयेगा।

बात क्या थी? उनका मन बहुत मज़बूत था, ख़्याल मज़बूत था, सच्चाई थी, नेक-चलनी थी और अपने आप पर

और अपने बाजुओं की शक्ति पर पूरा विश्वास था। अगर यही बातें तुम्हारे अन्दर भी पैदा हो जायें तो तुम्हारी नेक-नीयती, अच्छा व्यवहार और कामयाबी को देखकर लोग तुम्हारी प्रशंसा करेंगे।

क्षत्रियों को शिक्षा

समुद्र का राजा पुल नहीं बनावे देता था लक्ष्मण जी ने तीर को कमान से जोड़ा और रामचन्द्र जी से कहा "देव-देव आलसी पुकारे" :—

उल उल अज़मान दानिशमन्द जब करने पै आते हैं।
समुन्दर फाड़ते हैं कोह से दरिया बहाते हैं॥

समुद्र डर के मारे कांपता हुआ भेंट लेकर आया, पुल के लिए रास्ता दे दिया, पुल बन गया, लंका फ़तह हो गई। लंका की जीत का सेहरा लक्ष्मण जी के सिर बांधा गया। जनकपुरी में धनुष-यज्ञ के अवसर पर जब कमान के टूटने की निराशा हो गई, राजा जनक ने सबको बुरा-भला कहा, सृष्टि को बहादुरों और दिलेरों से खाली बतला कर अपशब्द कहे तो लक्ष्मण जी अपने क्रोध को दबा न सके और बोले कि जहाँ एक भी सच्चा क्षत्रिय रहता है किसी को ऐसे अपशब्द मुँह से निकालने की हिम्मत नहीं होती। यहाँ रघुकुलभूषण श्री रामचन्द्र जी उपस्थित हैं परन्तु उनका भी ख़्याल न करते हुए राजा जनक ने ऐसी गुस्ताखी की :—

रघुबंसन महिमा जहाँ कोउ होई।
तेहि समाज अस कहै न कोई॥
कही जनक अस अनुचित बानी।
विद्यमान रघुकुल मनि जानी॥

इसी क्रोध की हालत में फिर कहते हैं "यह धनुष तो क्या चीज है मैं इस ब्रह्माण्ड के भी टुकड़े-२ कर सकता हूँ।

जनक दे अपने आपको समझा क्या है ?" लक्ष्मण जी की गर्जना को सुनकर पृथ्वी और आकाश काँप उठे। राम ने समझा-बुझा कर उन्हें शान्त किया। धनुष टूटने पर परशुराम जी क्रोध में आ गये। लक्ष्मण जी ने कहा "सूर्यवंशी मौत से भी नहीं डरते। अगर मलकुलमौत (मौत का फ़रिश्ता) भी मुझे ललकारे तो दम के दम में उसके होश ठिकाने कर दूं। रघुवंशी मुकाबिले में पीठ नहीं दिखलाते। यह हमारी खानदानी शान है, इत्यादि-इत्यादि।

ब्राह्मणों को शिक्षा

परशुराम को जब विश्वास हो गया कि प्रकृति ने रामचन्द्र जी को क़ौम की सरदारी के लिए प्रेरित किया है तो निहायत आदर और मान से उन्हें नमस्कार किया और अपनी कमान उन्हें भेंट कर दी। इसी तरह विश्वामित्र ऋषि ने उनकी बुद्धिमत्ता को देखकर उन्हें तीरन्दाज़ी और कमानदारी की विशेष शिक्षा दी। अगस्त्य ऋषि ने शत्रु के मुकाबिले के लिए उन्हें योग्य बना दिया, क्या इन बातों पर विचार करके लोग सबक हासिल करते हैं ? अफ़सोस-सद अफ़सोस !

माताओं को शिक्षा

कोशल्या जी रामचन्द्र जी से कहती हैं "अगर तुम्हारे पिता ने वन जाने की आज्ञा दी है तो मत जाओ क्योंकि आचार्य से गो पिता का अधिकार दसगुना होता है परन्तु मां का अधिकार सन्तान पर सोगुना बतलाया गया है। इसलिए मैं तुम्हें जाने से मना कर सकती हूं लेकिन अगर कैकेयी ने तुम्हें हुकम दिया है तो शौक से जाओ क्योंकि सौतेली मां का अधिकार सन्तान पर हज़ारगुना होता है। ये धर्म की बातें हैं। कैकेयी की आज्ञा तुरन्त मानो। कोई

यह न कहे कि राम ने माता की आज्ञा का उल्लंघन किया। जाओ ! खुशी से जाओ !! हँसते-खेलते हुए जाओ !!! और संसार में यश के भागी बनो।"

माता सुमित्रा लक्ष्मण जी को उपदेश देती हैं "बेटा ! राम बड़े भाई होने के नाते तुम्हारे पिता के समान हैं। जाओ सच्चे पुत्र की तरह दोनों की सेवा करो। उन्हें ज़रा भी कष्ट न हो। जहाँ राम हैं वहीं अयोध्या है। मेरी कोख उस समय पवित्र होगी जब मैं सुनूंगी कि लक्ष्मण ने रामचन्द्र जी की सेवा में अपने शरीर का त्याग कर दिया।"

क्या अब हमारे देश में ऐसी माताएँ हैं ? राम-राम कहो। अब तो माताएँ सन्तान को बुज़दिल, डरपोक और अधर्मी बना रही हैं। उनके रहन-सहन को देखो तो पता चले। दस-दस, बारह-बारह साल के लड़के रात के समय डर के मारे पेशाब करने के लिए अकेले नहीं निकलते। जब मां साथ जाये या कोई बड़ा आदमी पास खड़ा रहे तब पेशाब करेंगे। इस परिवर्तन का कहीं ठिकाना है ? विलायत में छोटे-२ बच्चों को बहादुरों के कारनामे सुना-२ कर उन्हें दिलेर और निडर बनाया जाता है परन्तु यहाँ की यह हालत है।

स्त्रियों को शिक्षा

सीता जी ने रामचन्द्र जी की खातिर महल के सारे ऐशो-आराम त्याग दिये और संकट में साथ देने के लिए तैयार हो गईं। पतिभक्ति का ऐसा उदाहरण कहाँ मिल सकता है। सीता जी के दिल के भाव का अन्दाज़ा लगाइये। चौदह साल तक कितनी मुश्किलों का सामना करना पड़ा। क्या यह आसान काम था ? लंका से वापसी के बाद पति की आज्ञा से निरपराध को बनवास मिला परन्तु शिकायत का एक शब्द भी जिह्वा पर न आया। यह सच्ची पतिभक्ति

स्त्री का आदर्श है। सती सीता का यह आदर्श स्त्रियों को अपने मस्तिष्क में रखना चाहिए।

धर्मियों को शिक्षा

दशरथ जी ने रामचन्द्र जी की जुदाई का कष्ट उठाना स्वीकार किया परन्तु अपनी बात पर दृढ़ रहे :—

'रघुकुल रीति सदा चली आई, प्राण जाइ पर वचन न जाई ।।'

दशरथ जी ने पुत्र-वियोग में शरीर छोड़ दिया। मन्त्री जाबालि चित्रकूट में रामचन्द्र जी की सेवा में पहुँचा और प्रार्थना की "ऐ आर्य ! राजा साहिब चल बसे। आप वापिस चल कर राज-काज सम्भालिये। इतनी सख्ती के साथ वचन का पालन करना इस समय मुनासिब नहीं है। आप खुद सोच-विचार से काम लीजिये।" रामचन्द्र जी ने उत्तर दिया मैं अपने पूज्य पिता जी की आज्ञा को टाल नहीं सकता। मैं उनमें कोई ऐब नहीं पाता। ऐ मन्त्री ! तुम मुझे ग़लत मार्ग पर चलने की शिक्षा देते हो। क्या यही तुम्हारा कर्त्तव्य है ? जाकर इन्तज़ाम में मन को लगाओ। मैं धर्म के मार्ग से हट नहीं सकता।

शिष्टाचार की शिक्षा

सीता जी के आभूषणों को खोज करके सुग्रीव ने रामचन्द्र जी को दिखाया। वो लक्ष्मण जी से पूछते हैं भाई लक्ष्मण ! देखो तो ये आभूषण सीता जी के हैं या नहीं ? लक्ष्मण यदि उत्तर देते हैं दूसरे आभूषणों को मैं पहचानता नहीं परन्तु पाँव के नूपुर को ज़रूर पहचानता हूँ क्योंकि प्रतिदिन माता सीता जी के चरण छूते समय मैं इन्हें देखता था। ये बेशक उन्हीं के आभूषण हैं।

सदाचार की शिक्षा

पुल्ला मसीह पारसी रामायण के लेखक सीता जी की

स्तुति में यूं लिखते हैं :—

तनुष रा पीर हन उरियाँ नदीदा ।
चूं जान अन्दर तन वा तन जां नदीदा ॥

लेखक ने बहुत बारीकी से काम लिया है। वो कहता है कि सीता जी के कपड़े ने भी उन्हें नंगी नहीं देखा। जैसे प्राण शरीर के अन्दर हैं परन्तु शरीर वे प्राणों को नहीं देखा। कैसा अच्छा उदाहरण दिया है।

राम की वास्तविक बड़ाई की शिक्षा

वही मुसलमान लेखक भक्ति के जज़बे में आकर कैसा सुहावना राग अलापता है। तबियत फड़क जाती है और मस्ती आ जाती है। कोई हिन्दु इस विचार को प्रकट करता तो और बात थी। यहाँ एक सच्चे मुसलमान को राम में खुदा का जलवा नजर आता है। उसके विचार बहुत शुद्ध हैं :—

बजाहर राम व दर बातन खुदा बूद ।
बमानी राम के अज़ूए जुदा बूद ॥
चुनी बुत गर व्याबम ऐ ब्राह्मन ।
अगर हिन्दु ना मर्दम काफ़रम मन ॥

अर्थ - बाहिर मैं तो राम थे परन्तु असल में वो जाते खुदा थे। वे उससे जुदा नहीं थे। ऐ ब्राह्मण! अगर ऐसा मनुष्य मुझे मिल जाये और मैं हिन्दु न हो जाऊं तो मुझे काफ़िर समझना।

मित्रता की शिक्षा

रामचन्द्र जी सुग्रीव से कहते हैं "मेरे लिए मित्र का दु:ख पर्वत के समान है। मैं अपने दु:ख को राई के बराबर भी नहीं समझता :—

जो न मित्र दु:ख होयं दुखारी,
तिन्हें विलोकत पातक भारी ॥

अर्थ—जो मित्र के दुःख से दुःखी नहीं होता उसका मुँह देखने से पाप लगता है। एक पारसी कवि इस बात को इस प्रकार लिखता है :—

दोस्त आँ बाशद कि गीरद दस्ते दोस्त।
दर परेशाँ हाली व दर मांदमी ॥

मित्र वो है जो मुसीबत में मित्र की सहायता करता है।

काम करने वालों को शिक्षा

हनुमान जी के दिल की मज़बूती और दिलेरी को देखिये। समुद्र पार कर गये, लंका में प्रवेश किया, अकेले थे, न कोई यार न मददगार। सीता जी से मिले, तसल्ली दी, रावण को अपमानित किया। विभीषण को अपना सहायक बना लिया। शत्रु के घर में फूट डाल दी। सारा भेद जान लिया उनकी कमजोरियों को समझ लिया। अकेले होते हुए भी सोने की लंका को जला कर भस्म कर दिया।

आचार्यों को शिक्षा

वसिष्ठ जी ने रामचन्द्र जी को जप-तप, संयम-नियम और ज्ञान-ध्यान सब कुछ सिखलाया जिसका पता महा-रामायण और योगवासिष्ठ को पढ़ने से लगता है परन्तु उनको 'अहं ब्रह्मास्मि' कहने वाला भिखमंगा साधु नहीं बनाया बल्कि वास्तविकता की शिक्षा देते हुए भी उन्हें राज-पाट और काम-काज के योग्य रखा। अगर ऐसी शिक्षा न होती तो न लंका फतह होती और न रामचन्द्र जी इस खूबी से राज का काम-काज संभाल सकते।

यह सच्ची शिक्षा की बड़ाई है।

सत्संग परमदयाल
फकीरचन्द जी महाराज
मानवता मन्दिर होशियारपुर

१३-४-७२ प्रातः

निर्वाण

करुणा निधान कृपाल सतगुरु प्रणतपाल महेश्वरम् ।
सत रूप सतपद धाम धुर, सत भाव सत विश्वम्भरम् ॥
दे भक्ति शक्ति मुक्ति युक्ति, तार लीजे दीन को ।
आया शरनागत तुम्हारे, शरन दीजै हीन को ॥
अति कठिन काल कराल माया, जाल बन्धन में पड़े ।
हम जीव निबल समर्थ हीन, सहते दुःख संकट बड़े ॥
नहिं बुद्धि समझ विवेक ज्ञान, न भक्ति ध्यान की सम्पदा ।
केवल तुम्हारी एक आस, भरोस रहती है सदा ॥
नाम दीजे प्रेम दीजे, दान दीजे भक्ति का ।
राधास्वामी अपना जन समझ कर, दया कीजे सर्वदा ॥

हर एक धर्म, सम्प्रदाय के आदमी उस मालिक के आगे प्रार्थना किया करते हैं । उनके शब्द चाहे कुछ भी हों मगर उनका भाव यह होता है कि वह मालिक से प्रेम और भक्ति मांगते हैं ताकि उनका जीवन भली प्रकार बीत जाये । मैं भी मालिक का नाम लिया करता था मगर शरणागत था । सन् १९०५ ई० में २४ घटे होने के बाद मेरा एक दृश्य मुझे महर्षि शिवव्रत लाल जी के चरणों में ले गया । उन्होंने मुझे सन्तमत की दीक्षा दी । इस मत की बाणियों में अन्य

मत-मतान्तरों को काल और माया में बताया गया है और सबको अधूरा कहा गया है और सन्तमत को सब से ऊँचा और पूर्ण बताया गया है। मैं उसका खंडन उस समय सहन नहीं कर सकता था यद्यपि मुझे इस बाणी की समझ नहीं आती थी। दाता दयाल जी पर मेरा जो विश्वास था वह अटूट था क्योंकि उनको अवतार मानता था। उस समय प्रण किया था कि जो कुछ मुझको प्राप्त होगा वह संसार को बता जाऊंगा। उसी अपनी वासना या कर्म के आधीन जो कुछ मुझे प्राप्त हुआ वह सत्संगों में वर्णन कर रहा हूँ और इस वैसाखी के अवसर पर कहना चाहता हूँ। मुझे कोई दावा नहीं कि जो कुछ मैं कह रहा हूँ यह ठीक है। इसलिये मैंने कादरी बाबा, श्री वसिष्ठ जी, प्रिंसीपल रलाराम जी, सन्त हरनाम सिंह जी, आनन्दराव जी, सन्त कृपाल सिंह जी को बुलाया है। यदि मैं ग़लती पर हूँ तो यह महापुरुष मेरी गलत समझ को दूर करें ताकि लोग पथ-भ्रष्ट न हो जायें।

आज के लिए मैंने 'निर्वाण' का विषय रखा है। मैं आज यह बताना चाहता हूँ कि निर्वाण क्या है। जैन, बौद्ध और सनातन धर्म में अन्तिम अवस्था का नाम निर्वाण है। मुसलमानों में भी निजात कहते हैं। मैंने जो आज 'मनुष्य बनो' का चोला पहन कर स्वाँग बना रखा है यह मेरे जीवन का निचोड़ है। निर्वाण प्राप्त करने के बाद जिस प्रकार जीवन व्यतीत किया जाता है आज मैं उसका क्रियात्मक रूप या नमूना बन के बैठा हुआ हूँ।

निर्वाण का अर्थ है फूंक मार कर उड़ा देना अर्थात् मन के जितने भाव, विचार रूप-रंग हैं उनको समाप्त कर देना ही निर्वाण है। मुझ पर तो दाता दयाल की दया हो गई और आप लोगों की कृपा से मैं निर्वाण के रूप को समझ गया

मगर अभी तक निर्वाण में मेरी पूरी तरह स्थिति नहीं हुई। अभी तक गिरता रहता हूँ। गिरना क्या है? मन में कई एक फुरनायें आ जाती हैं। कभी-कभी तो यह ज्ञान रहता है कि यह सब माया है और कभी मानव-चोले में भूल जाता हूँ और अपने विचारों को सच मान कर खेल कर जाता हूँ।

निर्वाण क्या है? यह आत्म अवस्था है। इससे परे एक और अवस्था है। जब से मुझे यह ज्ञात हुआ है कि मेरा रूप लोगों के अन्दर प्रकट होकर हर तरह से सहायता करता है और उनके काम करता है मगर मुझ कोई जानकारी नहीं होती तो मैं आगे जाने के लिए विवश हो गया। मेरे अन्दर भी कभी राम, कभी कृष्ण और कभी गुरु प्रकट होते थे। मैं भी उनको सत मानता था। लेकिन अब समझ आ गई कि यह जो कुछ या जो रूप किसी के अन्दर प्रकट होता है यह सब उसका अपना ही मन और अपनी ही श्रद्धा, विश्वास होता है।

मैंने दर्द दिल से संसार के हित के लिए यह काम किया है। इन धर्म, पन्थों और गद्दी वालों ने संसार को अज्ञान में रख कर मूर्ख बनाया हुआ है और दुनिया का धन लूटा है। उनसे नाक रगड़वाई है। लोग कहते हैं कि अन्त समय गुरु आकर ले जाता है। इसी एक बात के प्रभाव में बड़े-२ डेरे और बड़ी-२ गद्दियाँ बन गईं और दुनिया विभिन्न धर्म व पन्थों में बँट गई।

इस बार मैं उज्जैन गया। वहाँ एक ९० साल की बूढ़ी स्त्री मर गई। मरने से पहले वह होश में थी। कहने लगी हजूर बाबा सावन सिंह जी आ गये। फिर कहने लगी बाबा जगत सिंह जी आ गये। फिर कहा कि बाबा फकीर प्रकाश में आ गये। वह कहते हैं कि वह देखो कितना सुन्दर बाग है। उसमें एक सुन्दर कुटिया है। तुमको उस कुटिया में ले

जाऊंगा। इसके बाद उसने राधास्वामी कहा और प्राण त्याग दिये।

ऐ धार्मिक जगत् के लोगो! मैं किसी के विरुद्ध नहीं कह रहा हूँ जो कुछ कह रहा हूँ वह शत-प्रतिशत सच है। मैं निबल, अबल और अज्ञानी जीवों के लिए अवतार लेकर आया हूँ। दाता दयाल जी की मेरे नाम यह आज्ञा है :—

तू तो आया नर देही में, घर फकीर का भेषा।
दुःखी जीव को अंग लगाकर, लेजा गुरु के देसा॥
तीन ताप से जीव दुःखी हैं, निबल अबल अज्ञानी।
तेरा काम दया का भाई, नाम दान दे दानी॥

मैं तो उस स्त्री के अन्दर गया नहीं और न यह मालूम कि वह कब मरी। यह वह रहस्य है जो न कबीर साहिब ने और न किसी दूसरे सन्त ने स्पष्ट रूप से खोला है। मैंने इस भेद को क्यों खोला है? यह समय की मांग है। इस रहस्य को पर्दे में रखने का परिणाम यह हुआ कि संसार विभिन्न धर्म, पन्थों और गद्दियों में बँट गया और आपस में घृणा, द्वेष और ईर्ष्या पैदा हो गई। गद्दियों के लिए मुकदमेबाज़ी हो रही है। तुम लोग सत्संग में आये हो। मैं निर्भय होकर तुमको कहना चाहता हूँ कि निर्वाण क्या है? निर्वाण वह अवस्था है जहाँ मनुष्य को यह ज्ञान हो जाता है कि मन में उठने वाले जितने भाव-विचार हैं, यह वास्तव में हैं नहीं। यह सब माया है। जिस तरह उस बूढ़ी स्त्री के अन्दर जो बाबा फकीर दिखाई पड़ा वह वास्तव में था नहीं मगर उसको भासता था। इसको हिन्दू शास्त्र माया कहते हैं। एक हमारी माया है। उससे तो हम निकल सकते हैं। एक भगवान् की माया है। सूर्य, चन्द्रमा, तारागण, पृथ्वी आदि यह हमारी माया नहीं है। वेदान्ती कहते हैं कि यह दुनिया है नहीं, यह सूर्य चन्द्रमा आदि हैं नहीं। हम

कैसे अन्धे होकर कह दें कि दुनिया या सूर्य, चन्द्रमा आदि नहीं हैं। हमारे बन्धन का कारण यह दुनिया नहीं है किन्तु हमारे मन के भाव-विचार हैं तथा मन की वासनाएं और उथल-पुथल हैं।

शिष्य नवत हैं गुरु को, यह जानें सब कोय।
गुरु नवें जो शिष्य को, बिरला जाने कोय॥

मैं वह गुरु हूँ जो तुम लोगों के आगे अपना सिर नवाता हूँ क्योंकि तुम्हारी बदौलत मुझे यह ज्ञान हुआ कि मैं किसी के अन्दर नहीं जाता। मनुष्य के अन्दर जो रूप प्रकट होते हैं यह संस्कार हैं। यदि तुम्हारा मन पवित्र है तो यह रूप तुमको पवित्रता की ओर ले जायेगा। यदि मन अपवित्र है तो यह तुमको बुराई की ओर ले जायेगा। अब मैं अमरीका जा रहा हूं। वहाँ एक संस्था ने मुझे बुलाया है। क्यों? वहाँ कई आदमियों के अन्दर मेरा रूप प्रकट होता है। वह अचम्भे में हैं। उस संस्था के लगभग २० हजार मैम्बर हैं। अब किराया वह देंगे और जाऊंगा मैं। वह कहते हैं कि बाबा हमारे अन्दर आता है लेकिन मुझे पता तक नहीं है। हो सकता है आप मेरी इस सच्चाई से सहमत न हों लेकिन मुझे इस बात का कोई दुःख नहीं है।

यह जो अन्दर में दृश्य दिखाई पड़ते हैं इन से हानि भी है और लाभ भी है। मेरा भी तो एक दृश्य ही था जो मैं दाता दयाल जी के चरणों में गया था। मुझे मालिक में मिलने की तड़प थी। वही तड़प मुझे वहाँ ले गई। इसलिए तुम्हारा मन ही तुम्हारा साथी है बशर्ते कि तुम्हारे विचार शुद्ध हों।

आप लोगों के अनुभवों से मुझे ज्ञान हो गया। अब मेरा साधन क्या है? अब मैं साधन के समय मन के सब रूप-रंग छोड़ जाता हूँ, यहाँ तक कि गुरु के मानव रूप को भी

आप लोगों के अनुभवों से मुझे ज्ञान हो गया। अब मेरा साधन क्या है ? अब मैं साधन के समय मन के सब रूप-रंग छोड़ जाता हूँ, यहाँ तक कि गुरु के मानव रूप को भी छोड़ जाता हूं। आगे आता है प्रकाश और शब्द अर्थात् पारब्रह्म और शब्दब्रह्म। लोग राधास्वामी मत को बुरा समझते हैं लेकिन मैं कहता हूँ कि उनकी समझ में नहीं आया। जिस विभूति ने यह मत चलाया है वह लिखते हैं कि सतगुरु शब्दस्वरूपी दयाल हैं और उनके चरण प्रकाश हैं। बाहर के गुरु की तो यह ड्यूटी है कि जीव को उसकी प्रकृति के अनुसार चलाकर शब्द और प्रकाश में ले जाय। यही सनातन धर्म की शिक्षा है। गायत्री मन्त्र और प्राणायाम मन्त्र का साधन बताया जाता है अर्थात् अपने अन्दर प्रकाश को पैदा करना। ऐसी स्थिति में राधास्वामी मत और सनातन धर्म में कोई अन्तर नहीं है।

मेरा मिशन क्या है ? मैं मानव जाति और धर्मों की एकता को आया हूँ। निर्वाण से परे आध्यात्मिक देश है। हमारा आत्मा अजर-अमर है। यह स्वयं शब्द और प्रकाश स्वरूप है। जब तक कोई आदमी दसवें द्वार या निर्विकल्प समाधि से परे नहीं जाये यह निर्वाण प्राप्त नहीं कर सकता। जनरल साहब ने मुझे कहा था कि इस गूढ़ विषय को पब्लिक के सामने रख रहे हैं लेकिन पब्लिक इसकी अधिकारी नहीं है। मैं कहता हूँ कि दुनिया को इस समय इस शिक्षा की आवश्यकता है। इसी शिक्षा से दुनिया का कल्याण होगा। यह समय की मांग है। जब तक शरीर और मन तुम्हारे साथ है उस समय तक तुम वेद मार्ग की शरण लो—शिवसंकल्पमस्तु। कल्याणकारी विचारों से तुम्हारा कल्याण होगा। तुम्हारी दुनिया श्रेष्ठ बनेगी। यदि दुनिया श्रेष्ठ बनाना चाहते हो तो मन के मते मत चलो।

मन के मते न चालिये, मन के मते अनेक।
जो मन पर असवार है, सो साधु कोई एक ।।

हर एक व्यक्ति को गुरु धारण करना आवश्यक है। लेकिन उस गुरु से सम्बन्ध जोड़ो जो मानसिक विज्ञान (मेंटल साइकोलोजी) का मास्टर हो जो तुम्हारे विचार और तुम्हारी प्रकृति को समझकर तुमको ठीक रास्ता बता सके। मैंने संक्षिप्त और सादा शब्दों में आपको निर्वाण के बारे में बताया है, पहिले निर्वाण फिर आत्मपद। अपने विचारों में न फँसना ही निर्वाण है। मेरी बातों को साधारण बुद्धि वाला मनुष्य भी समझ सकता है। महर्षि शिवव्रत लाल जी तथा दूसरे महापुरुषों की बाणी से तुमको कोई वस्तु ढूंढ़नी पड़ेगी। अर्थात् मोती चनने पड़ेंगे लेकिन मेरे कथन में से आपको कुछ खोजना नहीं पड़ेगा। मोती निकले हुए पड़े हैं। उठा कर जेब में डाल लो। केवल अमल या आचरण करने की आवश्यकता है। मैंने इसको सुगम कर दिया है लेकिन कठिनाई तो यह है कि जब इस पर अमल करना चाहता हूँ तो मेरे भी हाथ-पाँव डगमगाने लगते हैं। मैं झूठ नहीं बोलता। मेरे जीवन का मिशन है सच्चाई। मैंने अपने जीवन में अपने लिए झूठ नहीं बोला, लेकिन अपने मातहतों के लिए अवश्य बहुत कुछ किया। इसलिए गुरु बनकर भी मैंने पाखंड नहीं जगाया कि हाँ मैं तुम्हारे अन्दर गया था या मैं गया था अमेरिका में यहाँ के लोगों के अन्दर या मैं तुमको तुम्हारे अन्त समय आकर ले जाऊंगा। यह गलत है मगर गिरता मैं भी रहता हूँ। इसका इलाज है विश्वास और रूप का सहारा। दुनियादारों को कहता हूँ कि एक रूप बनाओ चाहे राम का, चाहे कृष्ण का, चाहे किसी देवी-देवता का या किसी गुरु का मगर एक का हो। उसका सहारा लो और अपनी नीयत को शुद्ध रखो। इससे तुम्हारा

सांसारिक जीवन श्रेष्ठ बन जायेगा। जो निर्वाण चाहते हैं उनके लिए है कि अपने मन से ऊपर प्रकाश और शब्द अर्थात् पारब्रह्म और शब्दब्रह्म में जाओ।

मैंने वह काम अपने मान-आदर के लिए नहीं किया। यदि मान की आवश्यकता होती तो मैं भी दूसरे गुरुओं की तरह पर्दा रखता और आज लाखों-करोड़ों का मालिक होता। अब केवल समझदार लोग ही मुझे पैसा देते हैं। कल मेरे पास एक स्त्री आई। वह अमीर लोग हैं। कुछ समय हुआ वह मेरे पास पूना में आई। कहने लगी बाबा जी लड़का नहीं है और कारोबार भी फेल हो रहा है। मैंने कहा कि एक वस्तु मांगो। उसने लड़का मांगा। उसके लड़का हो गया। अब उनका हज़ारों रुपये का गवर्नमेंट के साथ झगड़ा चल रहा है। वह ठेकेदार है। किसी कारण उसको रुपये का भुगतान नहीं हो रहा। हो सकता है वह ऋणी भी हो। कल वह स्त्री मुझे १०१) रु० देने लगी। मैंने इन्कार कर दिया। मैंने सोचा कि यह बेचारे तो इस समय स्वयं ऋणी हैं और कष्ट में हैं। यदि हो सके तो अपने पास से इनको कुछ दे दूं। उस स्त्री के हठ करने पर केवल उसका मान रखने के लिए एक रुपया ले लिया।

मेरे मिशन का उद्देश्य है निर्वाण प्राप्त करना। यह ज्ञान से प्राप्त होगा। मन के सम्पूर्ण विचार माया हैं। इनके चक्र में न आना और प्रकाश में चले जाना। 'शिवसंकल्पमस्तु' के सिद्धान्त पर चलते हुए किसी धर्म-पन्थ का ध्यान न रखते हुए इस दुनिया में जीवन बिताना यह मेरे जीवन का मिशन है। इसलिए मैंने आज यह चोला पहिना है। तुमको जीवन मिला है। सत्संग में जाकर बात को समझो। अपने मन पर कण्ट्रोल करो कि जो कुछ कर्म में है वही मिलेगा। तुम्हारे कर्म को कोई बदल नहीं सकता।

दुनिया कहती है कि सन्त रेख पर मेख मार देते हैं। इसको मैं भी जानता हूँ। तुम्हारे विश्वास ने रेख में मेख मारनी है। मेरे पास बहुत से लोग आते हैं। उनके काम हो जाते हैं। क्या मैं उनके काम करता हूँ? नहीं। उनका विश्वास काम करता है। इसलिए जिस धर्म या पन्थ में हो, यदि रूहानियत (आत्मपद) चाहते हो तो मन के संकल्पों से ऊपर उठ कर अपने अन्दर शब्द और प्रकाश को प्रकट करो।

वशिष्ठ जी! बुरा न मानिये। मैं आपका इसलिए प्रेम नहीं करता कि आप एम० ए०, एम० ओ० एल० हैं; मैं आपको इसलिए प्रेम नहीं करता कि आप विद्वान् हैं। मैं आप से प्रेम इसलिए करता हूँ कि आप वशिष्ठ वंश में हैं। ऋषि वशिष्ठ की भी यही शिक्षा थी जो मैं दे रहा हूँ। योग वाशिष्ठ को पढ़ो। उन्होंने सबको कल्पित कहा है वशिष्ठ जी! मैंने आप से इसलिए कहा है कि आप प्रचार का कार्य करते हैं। यदि प्रचारक का अपना जीवन अमली है यदि वह अपने आप में सच्चा है तो उसकी रेडीयेशन से लोगों को लाभ पहुँच सकता है। मैंने सन् १९४२ के बाद किसी को नाम दान नहीं दिया। दुनिया मेरे पीछे घूमती फिरती है। अपनी कमज़ोरी को मैं स्वयं जानता हूँ। वशिष्ठ जी! मैंने आप से इसलिए प्रेम किया है कि आप से लोगों को सावित्री के ध्यान का विचार पैदा होगा और कल्याणकारी विचार फैलेंगे। प्रिंसीपल रलाराम जी आर्य समाज के नेता हैं। इनसे मैंने इसलिए प्रेम किया है कि यह आर्यसमाज में रहते हुए बजाय दूसरों का खंडन-मंडन करने के लोगों का ध्यान गायत्री मन्त्र की ओर दिलाया करें। कादरी साहिब से इसलिए प्रेम करता हूँ कि वह मुसलमानों के पीर हैं। मुसलमानों में रहते हुए उनके अन्दर से घृणा, द्वेष कम करें और नूर (प्रकाश) की ओर उनका ध्यान आकर्षित करें,

क्योंकि जब तक हम नूर में नहीं जायेंगे हमारा कल्याण नहीं होगा। अब आप लोगों की इच्छा है चाहे अल्लाह का सुमिरन करके अपने अन्दर प्रकाश पैदा करो, चाहे गायत्री मन्त्र के साधन से पैदा करो। राम-राम, वाहेगुरु या किसी और नाम की रट लगाने से कोई लाभ नहीं। लाभ तो तब होगा जब प्रकाश प्रकट हो जायेगा। राम-राम तो तोते भी जपते रहते हैं।

दाता दयाल ने मेरे नाम एक शब्द में लिखा था—

न अपना नाम रखना तुम न अपना निशाँ रखना।

यहाँ मेरे गुरु-भाई पीरेमुगां साहिब, सरदार हरनाम सिंह जी, श्री प्रेमानन्द जी और श्री आनन्द राव जी आये हैं। धाम की ड्यूटी प्रेमानन्द जी की लगाई गई है। मैंने तो केवल नन्दलाल को चेला बनाया है। यह बालब्रह्मचारी है। इसकी मां ने मुझे कहा था कि महाराज घर में बहू नहीं है मेरी सेवा कोई भी नहीं करता। उस समय नन्दलाल की शादी नहीं हुई थी। मैंने इससे कहा कि नन्दलाल तुम अपनी शादी मत करो और मां की सेवा करो। इसने मेरी आज्ञा मान कर आज तक शादी नहीं की।

मैंने अपने अनुभव के आधार पर निर्वाण को जो समझा वह कहा। हो सकता है कि सन्तों का निर्वाण कोई और हो। लेकिन ऐ महात्माओ! आप से यह कहे देता हूँ कि अब सही रास्ते पर आइये। सच्चाई-पसन्द इन्सान होने के नाते मैं अपने आपसे सवाल करता हूँ कि तुमको जीवन में क्या मिला। देखो मित्रो! जीवन में मुझे एक खोज थी और किसी हद तक अब भी है। जिसकी खोज थी उसको मैं राम समझता था। महर्षि शिवव्रत लाल जी महाराज पर मेरा पूर्ण विश्वास था। मैंने उनसे अत्यन्त प्रेम किया। दुनिया में मैंने बड़ा आनन्द लिया। ऋद्धि-सिद्धि तथा अन्य वस्तुओं

की कोई कमी नहीं रही। जब से मुझे ज्ञान हुआ कि मेरा रूप लोगों के अन्दर प्रकट होकर उनकी तरह-तरह से सहायता करता है लेकिन मैं नहीं होता तो मेरी सुरत या तवज्जह पलटा खा गई। मुझे विश्वास हो गया कि अन्दर में जितने भी विचार-भाव आदि पैदा होते हैं यह सब माया है। इसलिए अब मन सम अवस्था में रहता है और मेरी सुरत शब्द और प्रकाश के समुद्र में आनन्द लेती रहती है। अब चित्त हर तरफ से भर गया है। अब कोई काम करने को जी नहीं चाहता।

काम करने का कोई न कोई प्रयोजन होता है। चूंकि समाज को उभारना होता है इसलिए कोई कह देता है कि भले काम करो, कोई कह देता है कि निष्काम कर्म करो। यह सृष्टि भगवान् ने बनाई है। मुझे तो पता नहीं लगा कि यह कब से बनी है। किसी और को पता हो तो मुझे नहीं मालूम। मेरी अपनी यह अवस्था है कि दिमाग़ पर खामोशी छाई रहती है। यह मेरे कर्म, पता नहीं कब तक रहेंगे।

मैं यहां सब को क्यों बुलाता हूँ ? पब्लिक को यह सिद्ध करने के लिए कि हम सब एक हैं। मेरे यहां न कोई हिन्दु है न मुसलमान, न सिक्ख न ईसाई। न कोई समाजी है न सनातनी। मैंने यह चोला आज इसलिए पहना है कि मेरी रिसर्च का यह परिणाम है। मुझे मालिक का पता लग गया कि It is a State of Statelessness. It is a State of Conditionlesshess.

जब तक हम दुनिया में हैं इन्सान बन कर रहना चाहिए। यह मेरा मार्ग है।

आप लोगों को धन्यवाद देता हूँ कि आप मेरे बुलावे पर आ जाते हैं।

(श्री वशिष्ठ जी ने कहा कि महाराज ! अब आप

आशीर्वाद दीजिये। इस पर परमदयाल जी ने कहा)।

वशिष्ठ ! मैं कौन हूँ आशीर्वाद देने वाला ! मेरी तो आँखें खुल गईं। इतना पर्दा रखा गया कि भोले-भाले जीवों को मूर्ख बनाया गया। सच पूछो तो हम मूर्ख बनने के योग्य भी हैं। अब अमरीका में पुरुष और स्त्रियों के अन्दर मेरा रूप प्रकट होता है लेकिन मुझे पता नहीं होता, मैंने यह सच्चाई वर्णन करने के लिए ही 'मानवता मन्दिर' बनवाया है। सारी दुनिया मन के चक्र में आई हुई है। बाहर किसी के अन्दर न कोई राम आता है, न कृष्ण, न बाबा फकीर, न कोई और गुरु। वह मनुष्य का या अपने ही मन का खेल है। इसलिए गुरु की महिमा है मगर वह अज्ञान जल्दी जाता नहीं। जिस पर उस मालिक की दया होती है उसका यह अज्ञान दूर होता है। यदि मनुष्य इनको अपने प्रयत्न से दूर करना चाहे तो असम्भव है।

यह क्या खेल है मैं नहीं जानता। इतना जानता हूँ कि यदि मनुष्य का मन सच्चा है और वह सच्चा होकर उस मालिक के आगे प्रार्थना करता है तो वह अवश्य उसका कोई न कोई साधन बना देता है। यह मेरा अनुभव है। मैं झूठ बोल कर किसी से पैसा लेना जुर्म समझता हूँ। चार दिन का जीवन है। क्या यह धन-दौलत किसी के साथ जायेगा ?

जो वृक्ष ज्यादा फलदार होते हैं वे पृथ्वी की तरफ झुके रहते हैं। इसी प्रकार समझदार और बड़े लोग नम्रता से जीवन गुजारते हैं।

—दाता दयाल

सत्संग परमदयाल

फ़कीरचन्द जी महाराज

मानवता मन्दिर होशियारपुर

१३-४-१९७२ सायं

मैंने जो कुछ कहा वह मेरा अपना अनुभव है। दूसरे महात्माओं ने जो कुछ कहा वह उनका अनुभव होगा या पुस्तकीय ज्ञान होगा, इसका मुझे पता नहीं। मुझे इस बात की चिन्ता नहीं है कि मेरे स्पष्ट वर्णन से मुझे कोई गुरु मानता है या नहीं, मैं तो गुरु कहलाना महापाप समझता हूँ। गुरु नाम है शब्द, प्रकाश और अनुभव का गुरु एक आदर्श है। सन्तमत जो मानव जाति को इकट्ठा करने के लिए आया था आज विभिन्न गद्दियों में बँट चुका है। दाता दयाल जी का एक शब्द है :—

क्या है पद निर्वाण, नहीं कुछ समझ में आवे।
कोई करे इस लोक की आशा, कोई परलोक बनावे॥
मन्त्र पढ़ें संध्या अरु जप तप, देवी देव मनावे।
मन्दिर मूरति की परिक्रमा, बैठ के ध्यान लगावे॥
मन का मतवाला बन देखे, पक्षपात उरझावे।
झगड़ा ठान के करे लड़ाई, भरमे और भरमावे॥
आसन मारे जोग जतन किये, गहरी समाधि में जावे।
जड़ चेतन न गांठ खुले कभी, जब तक रूप बनावे॥

खोज खोज के खोज थके जब, गुरु की संगत जावे ।
राधास्वामी दया रूप लख आवे, सोई निर्वाण कहावे ।।

दाता दयाल कहते हैं कि गुरु की संगत में जाने से तुमको इस ज्ञान का पता लगेगा । मैं गुरु की संगत में गया था । उन्होंने मुझे आज्ञा दी थी कि सत्संग कराया करो और नाम दान दिया करो तुमको सतगुरु के दर्शन सत्संगियों के रूप में होंगे । यह बात सन् १९१९ की है ।

गुरु बतावें साध को, साध कहें गुरु पूज ।
अर्श पर्श के मेल से, बूझी बूझ अबूझ ।।

गुरु के पास जाओ तो वह कहते हैं कि संगत की सेवा करो और संगत के पास जाओ तो वह कहते हैं कि गुरु की सेवा करो । दोनों के मेल से जो अनसमझी हुई बात है वह समझ में आ जाती है । दाता दयाल जी महाराज तो अब चोला छोड़ चुके हैं । वह कहाँ गये ? अब यदि मैं यह कह दूं कि वह ज्योति में समा गये या वह सतलोक को चले गये तो मेरे पास कोई प्रमाण नहीं है । मेरा जीवन अनुभवों पर निर्भर है ।

हजूर बाबा सावन सिंह जी चोला छोड़ गये । इसके बाद कई आदमी यह कहते हैं कि बाबा जी ने उनको साक्षात् दर्शन दिये और बातचीत की । ऐसी बातों को कभी मैं भी सच माना करता था । अब मेरे तो भ्रम चले गये । अब मैं आप लोगों के भ्रम मिटाना चाहता हूँ । हजूर महाराज राय सालिग राम साहिब की जीवनी उनके लड़के या पोते ने लिखी है । उसमें लिखा है कि एक आदमी मथुरा निवासी हजूर महाराज के पास नाम लेने के लिए आ रहा था । उसको आगरा पहुँचने पर मालूम हुआ कि महाराज चोला छोड़ गये हैं । उस आदमी को बड़ा शोक हुआ । वह उदास होकर जंगल में फिर रहा था । अचानक देखता है कि

आकाश से एक विमान लेकर हजूर महाराज आये और उसको कहा कि तुम क्यों रो रहे हो। मैं तो पीपल मण्डो में रहता हूँ। वहाँ जा कर नाम ले लो।

अब जब कोई कहता है कि बाबा फकीर मेरा साईंस का पर्चा हल करा गया, कोई कहता है मुझे नदी में डूबते हुए बचा गया, कोई कहता है कि मुझे दवा बता गया, कोई कहता है मुझे बच्चा दे गया और मुझे पता नहीं होता है तो फिर वह कौन है जो जाता है ?

यह सारा संसार भ्रम और माया के चक्र में आया हुआ है। मेरी बात बहुत ऊँची है। तुम्हारी बुद्धि वहाँ तक पहुँच नहीं सकती। जब मैं होशियारपुर में जिचा बैठा हुआ हूँ और मुझे ऐसी घटनाओं का कोई ज्ञान नहीं होता तो ऐसे ही दूसरे महात्माओं को भी पता नहीं होता। महात्मा मेरे सामने मानते हैं कि हम किसी के अन्दर में नहीं जाते लेकिन सच्चाई प्रकट नहीं करते। क्यों ? अपने आडम्बर और अपने मान के लिए या लोगों से धन इकट्ठा करने के लिए। सच्चाई क्या है ? यह कि ऐ इन्सान ! यह जितना खेल है यह सब तेरे अपने मन का है। तेरे विश्वास का है। यह सब तेरा अपना ही आत्मा है। जिसको अपने रूप का ज्ञान हो गया और वह उस ज्ञान में आरूढ़ हो गया, वह है विदेह पुरुष और यही निर्वाण है। वह दुनिया में रहते हुए सारे खेल भी करता है लेकिन उसमें लिप्त नहीं होता।

यदि आपका अन्तःकरण मेरी बात को ग़लत मानता है तो आप मेरी बात का खण्डन कर जायें। मुझे कोई अफसोस नहीं। मैं तो, गुरु सेवक हूँ। दाता दयाल शिवव्रत लाल जी ने कहा था कि फकीर ! धर्म, सम्प्रदाय सब बदल जायेंगे। मेरी वर्णनशैली को भी दुनिया पसन्द नहीं करेगी। इसलिए चोला छोड़ने से पहले शिक्षा को बदल देना। गुरु

सेवक होने के नाते और अपनी नीयत को साफ रखने के लिए मैंने शिक्षा को बदल दिया है। मैंने इस रहस्य या सच्चाई को बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है। मैंने किसी को नाम नहीं दिया। यह तो मौज की बात है कि बाहर जाता हूँ तो हजारों आदमी मेरे पीछे फिरते हैं। क्या मैं किसी को कुछ देता हूँ या किसी का गुरु हूँ ? मैं निर्वाण अवस्था में रहने की कोशिश करता रहता हूँ। वह अवस्था क्या है ?

हम बासी उस देश के जहां सत्तपुरुष का बास।

केवल यह सत ज्ञान प्रकट करने के लिए इस शरीर में आया हूँ। ताकि भारतवर्ष और संसार की भावी सन्तान को ज्ञान हो जाये और वह भिन्न-भिन्न गद्दियों में न बँट जाये। जो वर्तमान जीव हैं उनको तो तब समझ आयेगी जब रक्तपात होगा और सिर फटेंगे जैसे पूर्वी बंगाल दो जातियों की ग्यौरी से हानि उठाकर अब सैकुलरिज्म की ओर आयेगा।

अब पद निर्वाण क्या है ? दाता दयाल जी ने कहा है कि गुरु की संगत में जाओ। मैं गया था गुरु की संगत में। जो निर्वाण मैंने प्राप्त किया वह मैं कहता हूँ। हमारा अपने आप में या अपने स्वरूप में या मालिककुल में जो अकह, अपार, अगाध और अनामी है उसके अनुभव में रहने की अवस्था का नाम निर्वाण पद की प्राप्ति है। कबीर साहिब अपना अनुभव इस प्रकार कहते हैं :—

कहूँ उस देश की बतियाँ, जहाँ नहीं होत दिन रतियाँ।

मुझे नहीं पता कि कबीर साहिब ने किस भाव से यह कहा है कि वहां न दिन है न रात है लेकिन मैं यह समझता हूँ जैसे तुम रात को सो जाते हो तो तुमको पता नहीं होता कि अब दिन है या रात है या अब सूरज चढ़ा है या चन्द्रमा, इसी तरह हमारा जो अपना आप है जब वह मन के चक्र

को छोड़कर जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीया या तुरीयातीत को भूल जाता है तो उसको न दिन भासता है न रात। अब देखो तुम बैठे हो। तुम्हारे मुँह पर एक चींटी चढ़ जाती है। यदि तुम मन में नहीं होते तो तुमको वह महसूस नहीं होती। यदि तुम मन में नहीं होते तो तुमको वह महसूस नहीं होती। यदि तुम मन में होते हो तो इसको तुरन्त हटाने की कोशिश करते हो।

मैंने एक बार बाबा चरण सिंह जी को लिखा था कि दुनिया पागल होकर आपके पीछे फिरती है और आप से कुछ चाहती है। आप उनके भ्रम दूर करो। मैं कहता हूँ कि जो कुछ किसी को मिलता है वह उसका अपना विश्वास है। मैं तो हर समय यह कोशिश करता रहता हूँ कि दुनिया सच्चाई और असलियत को समझे।

मैं उस देश में कैसे जाता हूँ। जब से मुझे यह ज्ञान हुआ कि मैं किसी के अन्दर नहीं जाता तो मुझे यह समझ आ गई कि मेरे अन्दर जितने भाव-बिचार पैदा होते हैं यह एक फिल्म है। जैसे फिल्म में स्क्रीन पर घोड़े दौड़ते हैं, लड़ाई होती है, लोग नाचते गाते हैं, क्या यह सत्य है? नहीं। यह तो अक्स हैं और यह अक्स हमने पढ़ कर, सुनकर या प्रारब्ध कर्म के कारण लिये हुए हैं। निर्वाण का भी हमारे मस्तिष्क में एक स्थान है। जब हमारी सुरत त्रिकुटी के आगे उस स्थान पर जाती है तो फिर वह छेद बन्द हो जाते हैं और देखने वाली जो वस्तु है वह पीछे रह जाती है। यह भी वह संस्कार ही हैं जो मुझ से यह बातें कहला रहे हैं।

कहूँ उस देश की बतियाँ, जहां नहीं होत दिन रतियाँ।
नहिं वहां चन्द्र और तारा, नहीं उजियार अँधियारा॥
नहिं वहाँ पवन और पानी, गयी वह देश जिन जानी॥

वहाँ जाने का रास्ता क्या है? गायत्री मन्त्र, ओ३म्,

सहस्राकार, ओंकार, रारंगकार सोहंकार और सत्याकार या अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष और आनन्दमय कोष। जब तक हमारी सुरत इन श्रेणियों से आगे निकल कर ऊपर नहीं जायेगी, हम निर्वाण में नहीं जा सकते। यह बातों का पकवान नहीं है। यह क्रियात्मक जीवन से प्राप्त होता है। एक आदमी बीन सुनता है या शब्द सुनता है यदि उसको गुरु ज्ञान मिला हुआ नहीं है तो वह गिर जायेगा।

लोग कहते हैं कि काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार को मारो लेकिन मैं कहता हूँ कि यह मर जायेंगे तो तुम जिन्दा नहीं रह सकते। कहने का अभिप्राय यह है कि इनको समता में रखो। इनमें लिप्त न हो जाओ। दुनिया कहती है कि बाबा सावन सिंह को क्रोध नहीं आता था क्योंकि सन्तों ने काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार को मारा हुआ होता है। मैं कैसे इसे मानूं? उनको जब क्रोध आता तो लोगों को सोटी से मारा करते थे। क्या वह क्रोध नहीं करते थे? जब तक पिंड, अण्ड और ब्रह्माण्ड से परे नहीं जाते, यह तो रहेंगे ही। क्या गद्दी पर आने से सन्तों के बच्चे नहीं होते? यदि उन्होंने काम को मारा हुआ था तो उनके यहां बच्चे कैसे पैदा हो गये? अन्तर केवल इतना है कि एक में कण्ट्रोल है और दूसरे में कण्ट्रोल नहीं है। लोग कहेंगे कि मैं खण्डन कर रहा हूँ। नहीं, यह असलियत है। लोग कहते हैं कि बाबा जी! हमारे पाँच चोर निकाल दो। कौन निकालेगा तुम्हारे चोर? जब तक जीवन है, यह तो रहेंगे। हाँ! अपनी दृष्टि को इन से ऊँची ले जाओ। यह चोर अपने आप समाप्त हो जायेंगे। बसरा-बग़दाद में मैंने बारह-२ घण्टे अभ्यास किया लेकिन घर में आकर फिर कामी हो गया। जब मैं वहाँ बीन सुना करता था तो मेरे

मन में अहंकार था कि मैंने मैदान मार लिया। उस समय मैं अधिकतर मस्ती में रहता था। लाहौर आया। दाता दयाल जी को माथा टेका। वह मुझे बाहर धूप में ले आये और देखने के बाद कहने लगे कि अभी तुम फकीर नहीं बने। केवल योगी ही बने हो। यह सुनकर मेरा सारा घमण्ड टूट गया। मुझे जब उदास देखा तो कहा कि अच्छा कल तुम्हारा इम्तिहान लूंगा। मैंने सोचा कि इम्तिहान में मुझ से यही पूछेंगे कि तुमने अन्तरीय स्थानों में क्या देखा, मैं सब कुछ बता दूंगा। सुबह को मैंने साग काटा ही था कि दाता दयाल आ गये और कहने लगे कि आज हम साग बनायेंगे। चूल्हे में आग जल रही थी। पतीली में घी डाल कर चूल्हे पर रख दी और मुझे एक मिनट में पचास हुक्म दे दिये कि पानी लाओ, हल्दी लाओ, नमक लाओ आदि मैं एक चीज़ उठाने को दौड़ूं तो दूसरी चीज लाने का हुक्म मिले, उस ओर दौड़ूं तो तीसरी का हुक्म मिले। अभिप्राय यह है कि मैं कोई चीज न ला सका। पतीली में घी को आग लग गई। उन्होंने पतीली उठाकर नीचे रख दी और चले गये। कहने लगे अच्छा तुम साग बनाओ।

शाम को जब मैंने कहा कि महाराज! मेरा इम्तिहान नहीं हुआ तो कहने लगे कि सबह साग बनाने के समय हो गया और तुम फेल हो गये। मैंने कहा कि आपने एक मिनट में पचास हुक्म दे दिये और मैं घबरा गया। कहने लगे, फकीर!

"न घबराना ही फकीरी है।"

एक आदमी अडोल रहता है। अनुभव और ज्ञान-दृष्टि से वह साधु है या फकीर है चाहे वह साधन करे या न करे। हमको अडोल अवस्था को प्राप्त करना है। इसके प्राप्त करने के भिन्न-२ ढंग हैं। वह गुरु ही बेहतर जानता है कि

किस तरह इस जीव को अभय पद प्राप्त हो सकता है। अभय पद ही इष्ट पद है। आप लोगों को निर्वाण के विषय में बता रहा हूँ। जिसको निर्वाण मिल जाता है वह अभय हो जाता है। मेरी भी अब यही अवस्था है मगर मैं अभी तक गिरता रहता हूँ। इसका मुझे दुःख है मगर यह मेरे वश की बात नहीं है। जब विचलित होने लगता हूँ तो मुझे याद आ जाता है और मैं संभल जाता हूँ।

मैंने सारा जीवन इसी खोज में बिताया है कि सन्तों के पास कौन सी ऐसी वस्तु है जो उन्होंने सब को काल और माया मत में बताया और अपने मत को ऊँचा बताया। सच तो यह है कि यह तो वही वेदों का मार्ग है। अभय पद, निर्वैरपना, अडोलपन, अकालपना और निर्द्वन्द्वपना। बात एक ही है लेकिन मिलती गुरु की दया से है। स्त्री जब दया करती है तो अपना शरीर तुम्हारे अर्पण कर देती है। गुरु जब दया करता है तो कोई बात भी तुमसे छिपाकर नहीं रखता बशर्ते कि शिष्य अधिकारी हो। मैंने निर्वाण का विषय रखा है। मैंने जो कुछ कहा है वह मेरे जीवन का अनुभव है और यह मेरी सन्तुष्टि के लिए ठीक है। गुरु ने काम दिया था और मैंने कर दिया। यदि मेरे इस काम से किसी को लाभ पहुंच जाये तो बहुत अच्छा है, मैंने तो अपना कर्म भोगा है। किसी पर कोई एहसान नहीं किया।

नहिं यहां धरनि अकाशा, करे कोई सन्त तहां बासा।

जिस देश का इन वाणियों में वर्णन है मैं जीवन भर उसको ढूंढ़ते-ढूंढ़ते थक गया। वह देश क्या है? जब हमारा आत्मा, मन, चित्त, बुद्धि और अहंकार को छोड़ जाता है तो उससे परे का जो अवस्था है उसमें मग्न हो जाने का नाम है निज स्वरूप अवस्था या आदि अवस्था। हम अपने ही आप यहाँ फंसे हैं और आप ही इस में से निकलना है।

अपने उरझे उरझियां, उरझे सब संसार।
अपने सुरझे सुरझियां, यह गुरु ज्ञान विचार ॥

उस अवस्था को प्राप्त करने लिए पहले देह से निकलो, फिर मन से निकलो, फिर शब्द और प्रकाश से निकलो। उसके बाद शेष जो वस्तु रह जाती है जो तुम्हारे अन्दर में रहती हुई शब्द को सुनती है, प्रकाश को देखती है और इनकी साक्षी है, वह है तुम्हारा निज स्वरूप मगर उसको तुम बातों से प्राप्त नहीं कर सकते। शास्त्रों में गायत्री मन्त्र का अजपा जाप बताया गया है। यह वेदपाठी ब्राह्मण मेरे एक सत्संग में आये थे तो मैंने उनसे कहा कि बिना जिह्वा हिलाये अजपा जाप किया करो। उन्होंने मुझे बताया कि गायत्री मन्त्र के अजपा जाप के समय दांत या जुबान नहीं हिलने चाहिएँ। जो कुछ उन्होंने कहा वह मेरे अनुभव और सन्तों की वाणी से मेल खाता है इसलिए मैंने इस बार उनको यहां बुलाया है।

यदि गायत्री मन्त्र के अजपा जाप के समय तुम अपने शरीर को नहीं भूलते तो गायत्री मन्त्र के सुमिरन का कोई लाभ नहीं है। जब तक तुम्हारे ध्यान में कोई न कोई मूर्ति आती रहेगी तुम निर्वाण को प्राप्त नहीं कर सकते क्योंकि वह रूप तो तुम्हारे मन ने बनाया है। बाहर से कोई देवी, देवता नहीं आते।

मैं शब्द भी सुनता था मगर रूप-रंग से मेरा प्रेम नहीं जाता था। यह प्रेम आप लोगों की दया से टूटा। मैं जानता हूँ कि आप लोग इतने ऊंचे ज्ञान के अधिकारी नहीं हो। मगर मैं जान-बूझ कर इस बात को छेड़ रहा हूँ। मैंने सुबह भी कहा था कि उस दीना नगर वाले आदमी के अन्दर उसका बाप आया था या देवी ने आकर कहा था कि तुम अपन तीनों लड़कों की बलि दे दो। ऐसे ही किसी के

अन्दर बाबा सावन सिंह जी, किसी के अन्दर बाबा फकीर और किसी के अन्दर राम या कृष्ण का रूप प्रकट होता है। यदि मन शुद्ध है तो तुम्हारा मन गुरु बनकर तुमको सीधे रास्ते पर ले जायेगा और यदि मन गन्दा है तो तुमको बुराई की ओर ले जायेगा। इसलिए राधास्वामी मत में किसी पूर्ण जीवित गुरु की आज्ञा के अधीन रहने का आदेश है। कोई मरा हुआ गुरु तुम्हारी सहायता नहीं कर सकता। हाँ, उनकी वाणी से लाभ उठाओ। मेरे गुरुभाई हरनाम सिंह जी कई बार मुझसे सहमत नहीं होते, न सही मगर मैं सच्चाई से हट नहीं सकता।

जब मैंने यह मन्दिर बनवाना शुरू किया तो उन दिनों एक बार मेरे स्वप्न में दाता दयाल जी और नन्दू भाई जी आये। स्वप्न में दाता दयाल जी ने कहा कि फकीर! तीन सौ रुपये लाओ मुझ आवश्यकता है। मैंने बक्स में से निकाल कर उनको तीन सौ रुपये दे दिये। आपने कहा फकीर! मेरा तुम्हारे साथ वायदा था कि मैं इस दुनिया से तब जाऊँगा जब तुम इष्ट पद पर पहुँच जाओगे। अब तुम इष्ट पद पर पहुँच गये हो इसलिए अब मैं जाता हूँ। उन्होंने समाधि लगाई और उनके शरीर में आग लग गई।

जब मैं स्वप्न से जाग्रत में आया तो मैंने समझा कि सचमुच वह दाता दयाल ही होंगे, लेकिन उसके बाद वह फिर भी कई बार मेरे स्वप्न में आये। इसलिए मेरे स्वप्न के अनुसार यदि वह धाम को चले गये थे तो वह फिर दुबारा मेरे पास कैसे आ गये? यह सब भूल और भ्रम है।

जग में प्रगटा परम दयाल, कहता है बाणी सुन्दर रसाल।
भ्रम भूले और माया जाल, जीव फँसे हैं हो बेहाल॥
भ्रम भुलावे भये दीवाने, नहिं समझे क्या है पद दयाल॥

इसलिए मैं इस समय संसार में अवतार लेकर आया

हूँ और जीवों के भ्रम दूर करने के लिए सत की वाणी कहता हूँ। जो कुछ मैंने स्वप्न में देखा वह मेरे अपने ही आत्मा का खेल था। उस समय मुझे रुपये की आवश्यकता थी। मेरे अपने ही ख़्याल ने दाता दयाल के रूप को बनाया। जो कुछ मेरे अनुभव में आया मैंने कहा। किसी की इच्छा, सुने न सुने। सिपाही का काम है कमाण्डर की आज्ञा मानना। मैं गुरु सेवक हूँ। ऐ भाई हरनाम सिंह! आप किसी समय मुझसे सहमत नहीं होते, न सही। आप लोग अपने और काम कीजिये। मैं तो अपना कर्त्तव्य पूरा कर चला। धाम में दाता दयाल जी का शिष्य काम करता है। दक्षिण में भाई नन्दू सिंह और आनन्द राव जी हैं। कृषक जी ने मुझसे नाम लिया था। वह बूढ़े हो गये हैं। अब जिसका जी चाहे आये और काम सम्हाले। मुझे अफ़सोस नहीं। चार दिन के जीवन के लिए अज्ञान नहीं फैलाना चाहता।

कैसे मानूं कि दाता दयाल जी स्वप्न में मेरे अन्दर आये! ऋषियों ने इसे छाया पुरुष कहा है और सन्तों ने इसे काल पुरुष कहा है। क्या अन्तर है सन्त मत और सनातन धर्म में? मैं दाता दयाल का बड़ा प्रेमी था, भावुक था मगर अज्ञानी था। मेरे अज्ञान को दूर करने के लिए उन्होंने मुझे यह काम दिया था। मैं गुरु नहीं हूँ। गुरु ऋण चुकाने को यह काम करता हूँ। यह भी मेरे पिछले जन्म के कर्म हैं। मेरे पास कितने ही जीव आते हैं। मैं लोगों को कह देता हूँ कि जा तेरा काम हो जायेगा, यद्यपि मुझे कोई पता नहीं होता कि उसका काम हो जायेगा या नहीं लोगों के काम हो जाते हैं और मुझे पिछले जन्म का यश मिलना था वह मिल जाता है।

नहिं तहँ धरनि अकासा, करे कोई सन्त वहाँ बासा।
वहाँ गम काल की नाहीं, नहीं तहाँ धूप और छाई॥

न जोगी जोग से ध्यावे, न तपसी देह जरवावे।
सहज में ध्यान से पावे, सुरत का खेल जिहि आवे ॥

योगी योग को अपने सामने रखकर मन के साथ योग करता है। वह निर्वाण को प्राप्त नहीं कर सकता। तपस्वी भी मन के साथ तपस्या करता है, वह भी निर्वाण को प्राप्त नहीं कर सकता है। जो लवज्जह या सुरत से खेल करता है वह प्राप्त कर सकता है। मुझे अब सुरत का खेल आ गया है, यद्यपि अभी तक परिपक्व नहीं हुआ।

सोहंगम नाद नहिं भाई। न बाजे शहनाई।
निःअक्षर जाप वहां जापे। उठत धुन सुन्न से आपे।
मन्दिर में दीप बहु बारी। नेन बिन भई अंधियारी।
कबीरा देश है न्यारा। लखे कोई नाम का प्यारा।

नाम क्या है ?

नाम रहे चौथे पद माहीं। यह ढूंढ़े त्रिलोकी मांहीं।

रा म रा म, या रा धा स्वा मी रा धा स्वा मी, यह नाम नहीं है। वह तो अपने आप की एक अवस्था है। उसको प्राप्त करने के लिए सुमिरन करते हुए पहिले देह से निकलना पड़ता है अर्थात् देह का भान नहीं रहता। फिर ध्यान करते-करते मन को छोड़ना पड़ता है। फिर उस वस्तु की खोज करनी पड़ती है जो अन्दर में सब का साक्षी है। यहां तक मेरा अनुभव है। आगे मालिक जाने।

मैंने इन महात्माओं के भाषण भी सुने और स्वयं भी बहुत कुछ कहा। अपने आप से सवाल करता हूँ कि तुझे क्या मिल गया इस सम्मेलन से ? यह सब कर्मभोग और माया का जाल है। यह सब को भोगना पड़ता है। जब मैंने इन सन्तों को देखा, किसी को कोई कष्ट, और किसी को कोई कष्ट, तो मेरे दिल में ख़्याल आया कि इन सन्तों ने इतनी तपस्या की और दुनिया को रास्ता दिखाया लेकिन

उनका क्या परिणाम हुआ ? हम सब लोग यह कहते हैं कि सन्त सतलोक को चले गये लेकिन क्या प्रमाण है किसी के पास ? केवल विश्वास है। मैंने दुनिया में बहुत दौड़ लगाई। अब अनुभव ने यह सिद्ध किया है कि शरणागतम् में शान्ति है।

मन्दिर वालों को कहे जाता हूँ कि धन एक विष है। इसका अनुचित इस्तेमाल मत करना। प्यासे को पानी, भूखे को रोटी दो। नंगे को कपड़ा और दाता दयाल जी की शिक्षा का प्रचार करो। यह मेरी प्रार्थना है कि सम्प्रदायों ने दुनिया को अज्ञानरूपी अन्धेरे में रखकर लोगों को लूटा है; इनका अज्ञान दूर करो। मगर यह अज्ञान जल्दी नहीं जाता। जीव सहारा चाहता है इसलिए कोई न कोई सहारा लेना पड़ता है। इसलिए जहाँ भी आपका विश्वास है वहाँ विश्वास रखो मगर एक पर विश्वास रखो।

आप लोग दूर-दूर से आये हैं। आपने मेरे कर्म कटवाने में मेरी सहायता की है। मैं सच्चे हृदय से आप लोगों को आशीर्वाद देता हूँ कि आप लोग सुखी रहो!

सबको शान्ति प्राप्त हो।

———

घड़ा, प्याला, कूजा और गमला सब मिट्टी से ही बनते हैं और वास्तव में सब के सब मिट्टी हैं। इस प्रकार जिसकी नज़र वास्तविकता देखने वाली बन गई है उसे उस एक ही मालिक का जलवा हर चीज़ और हर जानदार में नज़र आता है।

—दाता दयाल

सत्संग परमसन्त
हजूर मानव दयाल जी महाराज
इलाहाबाद (मीरापुर)
13 - 2 - 1985

आँखों का तारा सबका सहारा, हित चित से तू प्यारा है।
निर्मल शुद्ध बुद्ध हितकारी, सुख सम्पत्ति परिवारा है॥
घट-घट बासी आनन्द शासी, अविनाशी मंगलकारी।
रोम-रोम में रमता जोगी, रोग सोग से न्यारा है॥
गुणातीत गोविन्द मुरारी, पुरुषोत्तम करुणा सागर।
जन मन रंजन दोष विभंजन, प्रेम प्रीति भंडारा है॥
नामलेत भव सिन्धु सुखावे, ध्यानधरत कलिमल जावे।
भव दुःख मेटन दोष नसावन, भक्ति रीति का सारा है॥
करम धरम वैराग ज्ञान तत, विज्ञानी पूरा सच्चा।
हे दयाल करो दृष्टि दया की, हृदय दुःखी हमारा है॥
अब तो शरण में आन पड़ा हूँ, एक आस तेरी मुझको।
राधास्वामी चरण से प्रीति रहे नित, वही धुर इष्ट सहारा है॥

गुरुदेव - जगद्व्याप्तं ब्रह्मा -विष्णु - शिवात्मकम्।
गुरोः परतरं नहि किञ्चित् तस्मै श्री गुरवे नमः॥
मानवधर्मस्य धातारं दाता दयालस्य प्रियतमम्।
सन्तधर्मस्य गोप्तारं फकीरं वन्दे जगद्गुरुम्॥

राधास्वामी !

मेरी अपनी ही आत्मा के स्वरूप सत्संगी भाइयो और बहनों, इस कलियुग का विशेष महत्त्व है। इस युग में हरएक चीज़ हरएक बात सहज रूप में ही हो रही है। चाहे वह वस्तु हमारे भौतिक जीवन के लिए हो, या वह बौद्धिक जीवन के लिए हो, या आध्यात्मिक जीवन के लिए हो, या रूहानियत के लिए हो। इस युग में जिस्मानियत, रूहानियत वाले एक सहज रास्ता अपना रहे हैं। वैसे हमारे ऋषियों ने प्राचीन काल में जीवन को समन्वित बनाया लेकिन उस समय हर काम के लिए काफी समय लगता था, यानि जो उपनिषद् काल के विश्वविद्यालय हैं उनमें किसी एक विषय में ज्ञान प्राप्त करने के लिए विद्यार्थी को बारह-२ वर्ष तक पढ़ना पड़ता था। उपनिषद् में एक स्थान पर कथा आती है कि एक ब्रह्मचारी शिष्य किसी गुरु के आश्रम में किसी एक विषय में स्नातक की उपाधि लेने गया। ब्रह्मचारी बारह वर्ष तक गुरु के आश्रम में रहा। गुरुपत्नी इस ब्रह्मचारी को अलग खाना खिलाती थी। बारह वर्ष के बाद गुरु ने कहा कि आज तू स्नातक बन गया, तेरी शिक्षा पूर्ण हो गई। वह ब्रह्मचारी ऋषि पत्नी के पास खाना खाने गया। ऋषि-पत्नी ने खाना परोसा। जब उसने खाना खाया तो वह बोला "माता जी, शायद आज आप खाने में नमक डालना भूल गई हैं।" ऋषि पत्नी ने कहा "बेटा, ऐसा लगता है कि आज तेरी शिक्षा समाप्त हो गई है।" ब्रह्मचारी ने कहा "माँ, क्या बात है ? नमक का शिक्षा के साथ क्या सम्बन्ध ?" ऋषिपत्नी ने कहा "बेटा, बारह साल तक तू खाना खाता रहा, मैंने कभी नमक नहीं डाला, तुझे होश नहीं था कि खाने में नमक है या नहीं। आज तूने नमक माँगा ; इससे पता चला कि तेरी शिक्षा आज समाप्त हो

गई।" यह वो समय था जब बौद्धिक शिक्षा लेने में भी इतना समय लगता था तो रूहानियत का तो कहन ही क्या?

प्रत्येक मनुष्य के जीवन में यह सवाल उठता है कि मैं कौन हूँ? ख़ासकर यह सवाल उस समय उठता है जब उसकी और ज़रूरतें पूरी हो जाती हैं और उन ज़रूरतों के पूरा होने के बाद भी मन में कुरेद रहती है कि मैं पैदा हुआ, पढ़ा-लिखा, नौकरी की, व्यापार किया, बच्चे पैदा किये, आखिर यह है क्या? यह सारा खेल या झगड़ा है क्या? यह बड़ा भारी सवाल है कि मालिक जो अपने आप में पूर्ण है, उसको किसी चीज़ की कमी नहीं, वह सर्वशक्तिमान है सर्वज्ञ है, सर्वव्यापक है, सर्वाधार है, सब आधार उसमें हैं, सभी चीज़ें उसी के आधीन हैं; फिर उसने दुनिया का यह अरखञ्जा खड़ा क्यों किया? मालिक ने अपने आपको बिखेर करके एक बखेड़ा क्यों खड़ा किया? जिसको देखो अपनी धुन में मस्त है। इस संसार में किसी को कोई दुःख है, किसी को कोई दुःख है। आख़िर यह है क्या? मेरी पत्नी ने भी एक बार यह सवाल किया। इस सवाल पर ऋषियों ने, दार्शनिकों ने, भक्तों ने विचार किया। आख़िर में सभी ने यह कहा कि यह उस मालिक की लीला है। उस मालिक का वारपार कोई भी नहीं पा सकता है :—

अनादि तेरी अनन्त माया, सर्वस्व लीला दिखा रही है।
विशाल इन्दु की विशाल किरणें, जगत को लीला दिखा रही हैं॥

यह उसकी लीला है। लीला का मतलब खेल है। बच्चे सारा दिन खेलते हैं। एक बार बच्चों से पूछा गया कि बच्चो, तुम क्यों खेलते हो? बच्चों का कोई जवाब नहीं था। असल में बच्चों के अन्दर ज़रूरत से ज़्यादा शक्ति होती है। उस शक्ति को खपाने के लिए बच्चे खेलते हैं। इसी

प्रकाश कुछ लोगों का कहना है कि मालिक एक अनन्तशक्ति है। उस शक्ति की एक बूंद से यह सारा जगत् बन गया। वेदों में मालिक की अनन्त शक्ति का वर्णन है। वेदों में एक स्थान पर आया है कि ब्रह्म शक्ति से इतना भर गया कि वह उबल पड़ा। यह सब व्याख्याएँ हैं लेकिन अपूर्ण है। खेल का या लीला का कोई लक्ष्य नहीं होता है। वह सलक्ष्य है अपने आप में उसका महत्त्व है। इस प्रश्न का यह उत्तर भी सन्तोषजनक नहीं है। आखिर ये प्रवर्ग्य है, ब्रह्मोद है, प्राचुर्य है, आधिक्य है। लेकिन यह भी क्यों? दाता दयाल ने एक जगह बहुत सुन्दर लिखा है कि परमतत्त्व सर्वाधार ऐसा हीरा है जिसकी किरणें निकलने पर विकास होता है और जब वे किरणें हीरे के अन्दर सिमटती हैं तो सब समाप्त हो जाता है। हम सब उसी के अंश हैं लेकिन उसने हमें इतनी दूर क्यों फेंका? अनुभव के आधार पर इसका जवाब है कि हम किसी वस्तु का मूल्य उस समय समझते हैं जब हम उससे अलग हो जाते हैं। आपके घर में कोई ८०-९० साल का बूढ़ा व्यक्ति है, वह खांसता है, बीमार रहता है लेकिन आपको उसकी क़दर उसके मरने के बाद पता चलता है। उसने हमें अपने से दूर फेंक दिया जिससे जगत् के अन्दर हम प्रेम का अनुभव कर सकें। यह जगत् प्रेममय है। इस प्रेम के अनुभव के लिए ही तुम्हें विरह दिया गया है। हम इस जगत् में शरीर, मन और आत्मा के अन्दर रहते हुए भी उस मालिक के लिए तड़प रहे हैं। यह तड़प तब तक समाप्त नहीं हो सकती जब तक उस मालिक से प्यार का सीधा सम्बन्ध न हो। प्रेममय जगत् में तपन करारी है। हरएक के अन्दर यह तड़प तो है लेकिन यह पता नहीं कि हमें तड़प किस बात की है? हम शरीर के सुख के लिए सब साधन जुटाते हैं लेकिन फिर भी मनुष्य

को चैन नहीं है क्योंकि उसकी आत्मा तो कुछ और पुकार कर रही है। आत्मा कह रही है कि मैं पूर्ण से आई हूँ और पूर्ण में ही मिलूंगी। जब तक आत्मा का सम्बन्ध पूर्ण के साथ नहीं जुड़ जाता वह तड़पती ही रहती है।

मानव पूर्ण है, पूर्ण से आया है इसलिए वह पूर्ण है। जब बच्चा पैदा होता है तो उसके कानों में 'शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि, निरंजनोऽसी' कहा जाता था। इन शब्दों से बच्चे के कान में सील लग जाती थी। तुम पूर्ण के पुत्र हो। जब आप इस छोटे पुत्र को जान लोगे कि मैं कौन हूँ, तब तुम पूर्ण हो जाओगे और सभी जगह वह पूर्ण दिखाई देगा :—

जिधर देखता हूँ, उधर तू ही तू है।
कि हर शे में जलवा तेरा हू बहू है॥

उपनिषद् काल गुरु-शिष्य का काल था। एक शिष्य गुरु के आश्रम में गया। उसने गुरु से पूछा "मैं कौन हूँ? कहाँ से आया हूँ? आधार क्या है? परमात्मा क्या है? ब्रह्म क्या है? आत्मा क्या है? आत्मा और ब्रह्म का मिलान कैसे हो, संयोग कैसे हो? गुरु ने जवाब दिया "भई, देखो परमतत्त्व सर्वव्यापक है। निश्चित रूप से सब कुछ ब्रह्म ही है। कण-२ के अन्दर वह मौजूद है। जड़ के अन्दर वह सो रहा है। वनस्पति के अन्दर स्वप्न में है। पशु में वह चेतन है। मनुष्य में आत्मा चेतन है, और सन्त में वह परम चेतन है। उसकी डिग्रियाँ हैं, उसकी धाराओं के तट हैं। वह सब जगह मौजूद है। कुछ भी तो नहीं जो उसके बिना ठहर सके। उसी में से सब कुछ निकलता है। उसी पर वह प्रस्फुटित होता है। यह सारा जगत् उसका सिर्फ प्रवर्ग्य है। यह तो सब ब्रह्ममोवद है। सारा जगत् उसकी एक धार है। लेकिन तुम यह मत समझ लेना कि यह जगत् तो ब्रह्म है उस पर आधारित है लेकिन ब्रह्म इस पर आधारित नहीं है। ब्रह्म

इससे ऊँचा और बड़ा है। तुम यह भूल मत करना कि बूंद को सिन्धु समझ लो। बूंद सिन्धु का नमूना जरूर है लेकिन सिन्धु बड़ा है। यही भूल वेदान्तियों से होती है और वह 'अहं ब्रह्मास्मि' कहने लगते हैं। अरे! तुम तो ब्रह्म के अंश हो। शिष्य को समझाने के लिए उस समय की शिक्षा में दूसरा पक्ष भी था। वह था 'पोजेटिव तथा नेगेटिव'। इस पक्ष के द्वारा भी गुरु ने शिष्य को समझाया कि वह परमतत्त्व है, आधार है, पारब्रह्म है लेकिन वह फूल नहीं है, पत्ती नहीं है, रंग नहीं है, आकाश नहीं है। यह कहना कि वह ये नहीं है, ये नहीं है, ये नहीं है, इसका मतलब यह नहीं कि वह कुछ भी नहीं है। इसका मतलब है कि उस मालिक का मुकाबला नहीं है। सब कुछ उसी में है लेकिन वह उससे भी अलग है। इसलिए नेति-नेति-नेति कहा जाता है। अब नेति-नेति करने से कहीं भ्रम न हो जाये इसलिए आगे की बड़ी अमूर्त बात बता रहा हूँ। भाषा मूर्त है लेकिन वह अमूर्त है। भाषा सीमित है, वो असीमित है। मिसाल दे रहा हूँ, ये नहीं, ये नहीं, ये नहीं, ये नहीं, ये नहीं। आखिर ठहराव कहाँ है? जहाँ पर ठहराव होगा वहाँ पर आधार होगा जिस पर ठहरने के बाद सब प्रकार की चंचलता समाप्त हो जाती है। ठहराव है कहाँ? ठहराव भी तुम्हारे अन्दर है। ये जो मैं-२ कह रहा हूँ वो मेरा असली 'मैं' है। लेकिन इसका सबूत क्या है? दुनिया सबूत माँगती है मगर इसका सबूत भी दिया जा सकता है और उसका सबूत है निश्चितता। उसको समझने के लिए किसी भी प्रमाण की जरूरत नहीं। कैसे? सब चीजों को अनिश्चित मान कर चलो अन्त में ऐसी जगह पहुँचोगे जहाँ निश्चितता हो जायेगी। मान लिया कि शरीर में रहते हुए मैं कहता हूँ कि 'मैं हूँ' लेकिन यह शरीर तो छिन्न-भिन्न हो जाता है। शरीर

पर सन्देह किया जा सकता है। शरीर अनिश्चित है। मन भी अनिश्चित है। पृथ्वी अनिश्चित है, प्रकाश भी अनिश्चित है। आज सूर्य उदय हो रहा है कल न हो। हरएक बात पर सन्देह किया जा सकता है कि सूर्य है या नहीं, प्रकाश है या नहीं, आकाश है या नहीं। मुझे सन्देह है, सन्देह है। मुझे आत्मा में भी सन्देह है, परमात्मा में भी सन्देह है, सब में सन्देह है परन्तु एक बात में सन्देह नहीं है कि मैं सन्देह कर रहा हूँ, यह तो निश्चित बात है। अरे, मैं अनिश्चित हूँ मैं इस बात पर पहुँच चुका हूँ कि सब चीज़ अनिश्चित है। ये निश्चय हुआ कि सब चीज़ अनिश्चित है। सन्देह कहाँ पर है। मैं सन्देह करता हूँ लेकिन इस बात पर सन्देह नहीं कि मैं सन्देह कर रहा हूँ। लोग कहते हैं कि आत्मा को दिखाओ और आत्मा को फूल की तरह दिखा दिया लेकिन वह फूल तो नहीं है इस पर सन्देह किया जा सकता है। क्या आप अपने आप पर कभी सन्देह कर सकते हो ? सन्देह करना ही प्रमाण देता है कि आपके अन्दर कोई चीज़ है। यह एक नुक्ता है। पहले तो गुरु ने शिष्य को बताया कि यह सब कुछ परमतत्त्व है। सब चीज उसके अन्दर है। फिर कहा कि भई ये जगत् भी कुछ नहीं है वह तो इससे ऊँचा है। न आकाश है न पाताल है, न प्रमाण है, न अप्रमाण है, न शक्ति है, न प्रकाश है। नेति-नेति-नेति। एक दम से कहा कलमेसी, कि तुम वो हो। क्योंकि तुम अपने आप पर सन्देह नहीं करते। ऐसा ज्ञान देने के बाद शिष्य से कहा कि भई तेरी समझ में आ गया। शिष्य के सवाल किये गुरु ने जवाब देकर भ्रम दूर कर दिये। शिष्य की समझ में बात आ गई। गुरु का पहला क़दम था सच-२ बताया। दूसरा क़दम था बैठकर मनन करना। अब तीसरा क़दम है निदिध्यासन। गुरु ने शिष्य को कहा कि अब जाकर

निदिध्यासन से, ध्यान समाधि से खुद अनुभव कर लो, आत्म-साक्षात्कार कर लो। शिष्य चला गया और बारह साल के बाद गुरु के पास आया। गुरु ने कहा कि तुम्हें कुछ ज्ञान हुआ। शिष्य ने कहा "हाँ महाराज! मैंने देखा कि आपकी बात सही थी। जहाँ भी गया उसी का नजारा था। फूलों में, पत्तों में, आकाश में, नदियों में सभी जगह वहीं था।" इस प्रकार शिष्य आधे घण्टे तक बताता रहा। गुरु ने कहा "बेटा, अभी तक तेरी समझ में बात नहीं आई है। बारह साल और जाकर अनुभव कर।" शिष्य चला गया और बारह साल के बाद वापस आया और कहने लगा "गुरु जी मैंने खामखा में लम्बी-चौड़ी बात की थी। वह सब जगह मौजूद है और उससे परे भी है, हमारे अन्दर भी है हमारे बाहर भी है हम अनुभव कर सकते हैं।" गुरु ने कहा कि बात तो तू ने सही कही लेकिन अभी कुछ कम समझा है। बारह साल जाकर और अनुभव कर। शिष्य चला गया और बारह साल के बाद वापस गुरु के पास आया और गुरु को नमस्कार करके बैठ गया। न गुरु बोला न शिष्य बोला, शान्ति थी। तब गुरु ने कहा कि अब तेरी समझ में आ गया क्योंकि तू शान्त हो गया। यहाँ पर सब दलील समाप्त हो जाती है। तब हमारा सब अनुभव आकर यह बताता है :—

बूंद पानी में मिला क्या जुस्तजू।
जात में जब मिल गया, फिर क्यों करे गुफ्तगू॥

यह ज्ञान उसे ३६ साल में मिला। लेकिन कलियुग में तुरन्त मिलने का युग है। जितना मैटिरियल साहित्य में या किसी भी विषय में अब मिल रहा है उतना पहले कभी नहीं मिलता था। यदि आप शेक्सपीयर को जानना चाहते हो तो कम्प्यूटर का बटन दबाओ और एक मिनट में सब

कुछ जान लोगे। क्योंकि यह सहज युग है। इस युग में नाम का आधार है। इस युग में नाम की भक्ति से सहज में ही उस परमतत्त्व का ज्ञान तथा अनुभूति होती है। राधास्वामी नाम ही वह तत्त्व है जिसको पाने के लिए मनु और शतरूपा ने हज़ारों वर्ष तपस्या की। राधा नाम है आत्मा का और स्वामी नाम है परमात्मा का। राधा जगत् है, धारा है, व्यापक है, सौन्दर्य है, सत्यम् है, शिवम् है, सुन्दरम् है लेकिन जहाँ से यह जगत् निकला है जो इसका आधार है, वह अनन्त है, अनादि है, अनामी है, अविनाशी तत्त्व है। वह परिवर्तनशील है यह अपरिवर्तनशील है। वह चल है यह अचल है। वह गतिमान है, यह स्थिर है। जो स्थिर है वह स्वामी है, मालिक है। यह राधास्वामी का मतलब है। राधास्वामी किसी व्यक्ति या फिरके का नाम नहीं है। राधा लोक है, स्वामी परलोक है। स्वामी जी महाराज ने तो यहाँ तक कह दिया कि राधा-राधा है और स्वामी कुवँर कन्हाई है। सन्तमत उपनिषद् काल का नमूना है। उपनिषद् काल में श्रवण, मनन और निदिध्यासन था और सन्तमत में सत्संग सद्गुरु और सत्तनाम है। पहले सत्संग सुनना, मनन करना और फिर उसका अनुभव करके उसमें विलीन हो जाना। यह बात सही है कि :—

जब तक न देखो अपने नैना।
तब तक न मानो गुरु के बैना॥

इसका मतलब यह नहीं कि गुरु ने जो बताया वह ग़लत है। 'जब तक न देखो अपने नैना' का मतलब है कि जब तक तुम स्वयं अपने अनुभव में नहीं उतारोगे, तुम्हें पता नहीं चलेगा कि गुरु ने ग़लत कहा या सही कहा। जब तुम्हारे अनुभव में आ जायेगा तो तुम भी उस शिष्य की तरह गुरु को नमस्कार करके शान्त हो जाओगे। कुछ लोग इस पद्य

का अर्थ ग़लत समझते हैं और गुरु को एक तरफ फेंक देते हैं। उसी चीज़ को सुगम बनाना है। सन्तमत की सबसे बड़ी देन सत्संग है। अब वह समय तो रहा नहीं कि उस चीज़ को सुगम बनाने के लिए २० वर्ष तक गुरु के आश्रम में जाकर रहा जाये। इसीलिए कलियुग से सत्संग है। सत्संग क्या है :—

सब ही सुलभ सब दिन सब देसा।
सेवत सादर समन कलेसा ॥

इसी में राज छिपा है, सत्संग अनुभवी सत्पुरुष का। सत्संग उसका नहीं कि किताबों से पढ़कर उस ज्ञान को उगल दे। इससे फायदा नहीं होगा।

सत्संग हर जगह, हर व्यक्ति को सुलभ होता है इसमें उमर का कोई सवाल नहीं है। लोग कहते हैं कि भगवद्-गीता सन्यासवाद है लेकिन यह बात ग़लत है। भागवद्गीता सहज समाधि, सहज योग और सन्तमत का एक खास नमूना है। तो "सब ही सुलभ" सब को सुलभ है ; सभी अधिकारी हैं। 'सब दिन सब देसा' अब देखो हमारे सनातन धर्म की असलियत तो कुछ और है मगर लोग समझते या जानते नहीं। एकादशी, पूर्णमाशी आदि का व्रत रखना स्वास्थ्य के लिए तो अच्छा है। अगर आप कहो कि पूर्णमाशी के दिन सत्यनारायण की कथा करने से मालिक मिल जाये तो यह सही बात नहीं है। सत्संग सब दिन और सबको सभी जगह मिल सकता है ;—

'सदा दिवाली सन्त की आठों पहर अनन्द'

यह जरूरी नहीं कि मुक्ति काशी और हरिद्वार में ही मिलेगी। यह सब झूठी बातें हैं। कबीर के समय में यह कहा जाता था कि काशी में प्राण छोड़ने पर मुक्ति मिलती है और मगहर में प्राण छोड़ने पर नरक मिलता है लेकिन

कबीर साहिब ने कहा कि यदि मगहर में मरने से मुझे नरक मिलता है और मैं राम का प्रेमी हूं तो राम स्वयं आकर मुझे ले जायेंगे। अन्त में मगहर में कबीर का शरीर भी गायब हो गया। कबीर के बाद परमदयाल जी ने अमेरिका मे प्राण त्याग कर एक मिसाल कायम कर दी यह प्रमाणित करने के लिए कि सब देश में सुलभ है। सारा जगत् उसी का है। अरे काल तो दयाल है। अगर दयाल नहीं होता तो काल कहाँ से आता। यदि काल नहीं मिलेगा तो दयाल नहीं मिलेगा। जब काल मिलेगा तब दयाल मिलेगा। मानवीय शरीर इतना अच्छा चोला है कि देवता भी तरसते हैं :—

सेवत सादर समन कलेशा।

'सेवत सादर' अदब के साथ सत्संग में बैठो आपके सभी कलेश दूर हो जायेंगे।

आज जो शब्द पढ़ा गया उस शब्द के आधार पर मैं व्याख्या करता जाऊंगा :—

आँखों का तारा सबका सहारा,
हितचित से तू प्यारा है।
निर्मल शुद्ध बुद्ध हितकारी,
सुख सम्पत्ति परिवारा है।

आँखों का तारा कौन होता है? आँखों का तारा होता है नवजात शिशु। बच्चा माँ-बाप को प्यारा लगता है, सभी को प्यारा लगता है। अब यह क्यों प्यारा है? क्योंकि यह आत्मा है। आँखों का तारा तो वही है जो हरएक के अन्दर बैठा हुआ है। पति पत्नी को इसलिए प्यार करता है कि वह आत्मा है। तुम्हारे शरीर का सहारा ब्रह्मा-विष्णु है, मन का सहारा है कारण शरीर आत्मा और आत्मा उसका अंश है। आत्मा उसके अंश पर आधारित है जो सबका आधार

है, सबका सहारा है। इस कड़ी के अन्दर भेद छुपा है :—

'हितचित से तू प्यारा है'

अरे मेरे प्यारे मैं तेरे से निकला था, तेरे से आया था। तू सबके अन्दर मोजूद है। मैं यह भूल गया कि तू उनके अन्दर भी मोजूद है जिनको मैं शरीर मान बैठा था। मन मान बैठा था इसका नतीजा यह हुआ कि यदि मित्र को क्रोध आ गया तो मैंने मित्रता छोड़ दी। इस कड़ी में बड़ा रश्क है। हम हितचित कर बैठते हैं मकान से, टैलीविजन से, मोटरकारों से, पैसे से, लेकिन असली हितचित किससे करना है :—

निर्मल शुद्ध बुद्ध हितकारी, सुख सम्पत्ति परिवारा है।

लेकिन हम लौकिक जगत् के अन्दर सम्पत्ति ढूंढ़ते हैं मगर जब उसको जो शुद्ध है जिसके अन्दर कोई मल नहीं है, जो न शरीर है, न मन है, न प्रकाश है, पा जायेंगे तो हमारी आत्मा भी चमक उठेगी, मन भी शक्तिशाली हो जायेगा और हमारा शरीर भी स्वस्थ्य हो जायेगा। अरे आप पहले उस दयाल को ढूँढ़ो जिसके मिलने से दुनिया की बाकी चीजें आपके पास आती चली जायेंगी :—

मुक्ति की नहीं चाह मन में भक्ति प्यारी लाग।
राधास्वामी की दया से भाग पूरन जाग॥

राधास्वामी कौन ? राधास्वामी परमतत्व है। उसकी दया हो गई और वह हमें मिल गया तो बाकी चीजें हमें अपने आप मिल जायेंगी :—

घट घट बासी आनन्दरासी, अबिनाशी मंगलकारी।

घट-२ बासी हरएक के अन्दर मोजूद है। वैसे आपको बताया कि हमारा प्रेम जब किसी से होता है तो इसका मतलब है कि घट-२ बासी से ही प्रेम होता है वही हमें बुलाता है लेकिन हम समझते हैं कि किसी के शरीर से प्रेम हो गया। यदि शरीर खराब हो गया तो नफ़रत हो गई।

आनन्दरासी दुःख-सुख का सवाल ही नहीं उठता। उसकी जड़ ही आनन्द है, वह अविनाशी है, मंगलकारी है। शरीर का नाश हो सकता है, मन बदल सकता है, आत्मा भी वापस आ सकती है लेकिन अविनाशी मंगलकारी है। वहाँ अमंगल का सवाल ही नहीं होता है। इसलिए सन्त जो इस अनुभव के बाद सत्संग देता है उस सत्संग में मंगल ही मंगल होता है :—

रोम-रोम में रमता जोगी बोल बोल से न्यारा है।

हमारे रोम-२ में, कण-२ में उसी की शक्ति है। जब उसका अनुभव हो जायेगा तो लोक और परलोक भी बन जायेगा और मन का शोक भी समाप्त हो जायेगा :—

गुणातीत गोविन्द मुरारी, पुरुषोत्तम करुणा सागर।

गुणातीत का मतलब है गुणों से परे। सभी गुण उसी से निकले हैं। गुणातीत को पाने से सारे गुण अपने आप आ जाते हैं। सच्चिदानन्द गुणातीत है। गुणातीत गुणों का आधार है, गुणों का स्रोत है, गुणों की खान है। गोविन्द मुरारी, अब बताओ कोई सनातनी कहेगा कि राधास्वामी अलग है ? दाता दयाल फरमा रहे हैं—गोविन्द मुरारी। भगवान् कृष्ण को भी गोविन्द मुरारी कहा। आप भगवान् कृष्ण को अपना लक्ष्य मानकर भी पहुँच सकते हैं, बशर्ते कि आप गोविन्द का मतलब समझो। जो लोग कृष्ण या गुरु को मनुष्य समझेंगे वह परमतत्त्व को नहीं पा सकते हैं :—

गुरु को मानुष जानते ते नर कहिये अन्ध।
दुःखी होयं संसार में आगे यम का फन्द॥

इस वाणी को समझना चाहिए :—

वाणी जालम् महा जालम्।

गुरु है तो मनुष्य रूप में लेकिन यदि उसको शरीर ही माना जायेगा तो परमतत्त्व को नहीं पाया जा सकता। गुरु का

शरीर तो मनुष्य जैसा है इसलिए वह मनुष्य के से कार्य करेगा, खाना भी खायेगा, बात भी करेगा, बीमार भी होगा, इलाज भी करायेगा। इन सब बातों को देखकर लोग समझ लेते हैं कि यह तो हम से भी गया-बीता है। जो लोग गुरु के नजदीक रहते हैं उनको इस प्रकार के भ्रम हो जाते हैं और वह गुरु को परमतत्व न मानकर शरीर या मनुष्य मानने लगते हैं। मगर है वह परमतत्व और परमतत्व का ही ज्ञान देने आया है। मैं गोविन्द का मतलब बता रहा हूँ। गो का अर्थ है चलने वाला, जगत्। और 'गो' के साथ जो बिन्दु लगा है वह परमतत्व है। गो राधा है और बिन्दु स्वामी है। गो काल है और बिन्दु दयाल है। गुणातीत गोविन्द काल में भी है, जगत् में भी है, जगत् के बाहर भी वही है जो आपके अहंकार रूपी 'मुर' को मार देता है :—

पुरुषोत्तम करुणा सागर।

पुरुषोत्तम का मतलब है उत्तम पुरुषोत्तम आत्मा से परे परमतत्व है जो करुणा का अनन्त भन्डार है। उसकी करुणा का प्राचुर्य, उसकी दया इतनी है कि वह बताई नहीं जा सकती। जब उसकी तरफ ध्यान लगाया या उसमें लो लगा ली तो बाकी के काम स्वयं हो जाते हैं :—

जन मन रंजन दोष विभंजन, प्रेमप्रीत भण्डारा है।

जनमन रंजन—वह आपको आनन्द देने वाला है यह जगत् आनन्दमय है। दोष विभंजन वह दोषों को दूर करने वाला है। प्रेम प्रीत भण्डारा है। उसने प्रेम के लिए ही यह सारा जगत् बनाया है ताकि तुम प्रेम का अनुभव करो और अलग रहकर विरह में मालिक के पास जाने के लिए बेताब हो जाओ। जब तुम पूरी तरह बेताब होगे तब उससे मिलोगे :

नाम लेत भव सिन्धु सुखावें,
ध्यान धरत कलिमल जावें।

नाम लेत का मतलब नाम लेना नहीं है बल्कि उस नाम में खुद मिल जाना है। सुरत-शब्द योग से आपको आसानी से सब कुछ पता चल जायेगा। मीरा ने भगवान् कृष्ण की पत्थर की मूर्ति को परमतत्त्व मानकर ऐसा साधा कि वह उसी में अर्थात् परमतत्त्व में विलीन हो गई। उसका शरीर भी गायब हो गया। नाम लेवे का मतलब है कि उस नाम को साध लो और इतना साधो कि वही सब जगह दिखाई देने लगे इससे आपका भवसिन्धु समाप्त हो जायेगा। आप शरीर, मन और आत्मा से ऊपर उठ जाओगे :—

ध्यान धरत कलिमल जावें।

उसका ध्यान करो। उसका ध्यान आपके मन को शुद्ध कर देगा जिससे दूषित वातावरण का प्रभाव आपके मन पर नहीं पड़ेगा :—

भवदुःख मेटन दोष नसावन,
भक्ति रीति का सारा है।

ऐसे मालिक की हम पूजा करें, उसे प्यार करें वह हमें सब प्रकार से द्वन्द्वात्मक जगत् से हटा सकता है। हमें भक्त समझ कर विभक्त कर दे, उसी भक्ति रीति का सारांश है, निचोड़ है :—

करम धरम वैराग ज्ञान तत, विज्ञानी पूरा सच्चा।
है दयाल करो दृष्टि दया की, हृदय दुःखी हमारा है॥

कर्म, धर्म, वैराग्य, ज्ञान ये सब रास्ते हैं परमतत्त्व तक पहुँचने के। कर्म के रास्ते में कठिनाई है। धर्म पर चलने में भी मुश्किल है। एक रास्ता परहित का है :—

परहित सरिस धर्म नहीं भाई।
पर पीड़ा सम नहीं अधमाई॥

परहित अपने आप में सही है क्योंकि विज्ञान धर्म और सत्य का ज्ञान, ये सब चीजें सहज में मिल जाती हैं। जब

उस मालिक से लौ लगा ली जो सबका आधार है तो हमें चीजें आसानी से मिल जायेंगी। इस पंक्ति में कहा है कि हे दयाल तुम सब कुछ हो, दया की दृष्टि करो अब हृदय दुःखी हमारा है। मैंने आपको बताया कि वह मंगलमय है और यहाँ कहा है कि हृदय दुःखी है। यह समझने की बात है, इसलिए सत्संग का महत्त्व है। हृदय दुःखी इसलिए नहीं है कि आपको एक मंगलकारी सत्संग दिया। हृदय इसलिए दुःखी है कि हम उस मालिक से, परमतत्त्व से अलग होकर यहाँ क्यों आ गये :—

तू तो थी सतपुरुष की अंशी,
गोत लजाया शर्म न आयी।

तुम भूल गये हो कि उस पूर्ण से आये हो। जब तक तुम बेचैन नहीं होगे तब तक तुम उसके पास नहीं जा सकते।—

दिल वो दिल है जो हर घड़ी हर पल,
यादे जाना में बेकरार रहे।
आँख वो आँख है जो शामे सहर,
ग़मे कुर्बत में अश्क बार रहे।

जो मालिक के लिए नहीं रोता वह इन्सान नहीं है।—

अब तो शरण में आन पड़ा हूँ,
एक आस तेरी मुझको।
राधास्वामी चरन से प्रीत रहे नित,
वही धुर इष्ट सहारा है।

अब सब दुनिया की चीजें जो पहले अच्छी लगती थीं अब नहीं लगती। हे मालिक मेरा मन आपके प्रकाश रूपी चरण में लग जाये जिससे मैं सभी के अन्दर तुझे देखूँ। अब मैं तेरी शरण में आ गया हूँ। अब मेरा यही रास्ता है, यही रामस्तुति है जिसमें सबमें तुझे दिखा दिया :—

"जो सबको तुम्हीं में, तुम्हें सब में देखे।
वो आशिक है तेरा और माशूक तू है॥
जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है।
कि हर शै में जलवा तेरा हू बहू है॥"

हे मालिक, मेरी यह हालत हो जाये कि मैं हर जगह तुम्हें देखूं। भगवान् कृष्ण ने अर्जुन से कहा, "जो सब जगह मुझे ही देखता है, तथा पत्नी पति को प्यार करती है तो वह मेरे लिए ही करती है। पति पत्नी को प्यार करता है तो वह मेरे लिए ही करता है। तथा जो सभी को मेरे में देखता है, उसकी बाँह को मैं पकड़ लेता हूँ और उसे कभी नहीं छोड़ता। वह मेरे से कभी अलग नहीं होता है। मालिक से प्रार्थना करो कि भक्ति की, संयम की, सब जगह तुम्हें देखने की जो स्थिति है या दृष्टि है, वह हमेशा मेरे में बनी रहे। यही मेरा सहारा है। आज का सत्संग मैं यहीं पर समाप्त करता हूँ।

सबको राधास्वामी!

---

१. हमेशा सच बोलो और सच बोलने की कोशिश करो, परन्तु जिस सच्चाई से किसी का दिल दुखे, उससे परहेज करना ही ठीक है।

२. सोना जब तक आग में अच्छी तरह से तपाया न जाये वो कुन्दन नहीं बनता। इसी प्रकार जब तक इन्सान मुसीबतों की जिन्दगी से नहीं गुजरता उसका जीवन शानदार नहीं होता।

—दाता दयाल

मासिक सन्देश

परमसन्त हजूर मानव दयाल

डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा जी महाराज

मेरे परम प्रिय सत्संगियो,

राधास्वामी, परमदयाल जी सहाय !

पिछले मासिक सन्देश में मैंने अमेरिका से आने के बाद भारत के दौरे की कोई सूचना नहीं दी। मार्च के मासिक सन्देश में मैंने आपको यह बताया था कि १४ दिसम्बर को अमेरिका से आने के बाद मैं प्रातः काल ही दिल्ली से रवाना होकर होशियारपुर पहुँच गया था। और १५ दिसम्बर १९८६ को मासिक सत्संग देने के बाद ही शाम की गाड़ी से देहली के लिए रवाना हो गया था। हमें देहली से १६ दिसम्बर को ही दोपहर ढाई बजे की गाड़ी से सिकन्दराबाद आन्ध्र प्रदेश—रवाना होना पड़ा। उसका कारण यह था कि मुझे हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय में ऑल इण्डिया दार्शनिक कांग्रेस के हीरक जयन्ती सत्र पर १९ दिसम्बर से २३ दिसम्बर तक अध्यक्षता करनी थी। यह संस्था भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डा० सर्व पल्ली राधाकृष्णन के द्वारा १९२५ में स्थापित की गई थी। इसके पहले सत्र की अध्यक्षता गुरुदेव श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने की थी। भारत के सभी गण्यमान्य दर्शनशास्त्र के विद्वान्

प्रोफेसर और लेखक इस राष्ट्रीय संस्था के सदस्य होते हैं। कई सत्रों में पश्चिम और एशिया के दार्शनिक ने भी इसमें भाग लिया करते हैं। इस संस्था के हर सत्र में दार्शनिक अनेक विषयों पर अपने-२ शोधपत्र एवं लेख लिखते हैं जिनमें वह दर्शन के विषयों पर नया प्रकाश डालने की कोशिश करते हैं। इन विषयों में वेद, उपनिषद्, भगवद्गीता, विश्व-धर्म आदि भी शामिल है। मैं खुद इस संस्था का १९५० से सदस्य चला आ रहा हूँ।

दर्शनशास्त्र का प्रोफेसर और लेखक होने के नाते और काफी समय तक दर्शन शास्त्र पढ़ाने के नाते मैं इस संस्था की गतिविधियों में रुचि लेता रहा हूँ। सन् १९५० में रजत-जयन्ती अधिवेशन पर डा० एस. राधाकृष्णन ने अध्यक्षता की थी उस समय वह रूस में भारत के राजदूत थे। इसी संस्था का स्वर्णजयन्ती अधिवेशन सन् १९७० में देहली में आयोजित हुआ था और इसमें अनेक विदेशी दार्शनिकों ने भी भाग लिया।

मुझे हीरक जयन्ती अधिवेशन के लिए १९८४ में इस संस्था के ५९वें अधिवेशन पर जबलपुर में सर्वसम्मति से अध्यक्ष निर्वाचित किया गया था। इसलिए इस कर्त्तव्य को निभाने के लिए मैं श्रीमती भाग्य, श्री एस. एल. सेठी, श्री के. पी. वर्मा, श्री शब्दानन्द और कुमारी साधना के साथ १७ दिसम्बर को सिकन्दराबाद पहुँचा। १९ दिसम्बर प्रातःकाल इस अधिवेशन का उद्घाटन सत्र आयोजित हुआ। उदघाटन भाषण देने के लिए प्रधान मन्त्री श्री राजीव गाँधी उपस्थित हुए। इनके अलावा आन्ध्र प्रदेश की राज्यपाल श्रीमती कुमुद बेन जोशी और आन्ध्र प्रदेश के मुख्य मन्त्री श्री एन. टी. रामाराव भी मेरे साथ ही मंच पर मौजूद थे। श्री राजीव गाँधी ने अपने उद्घाटन भाषण में ख़ासकर

यह प्रश्न उठाया कि भारत के दार्शनिकों को इस सवाल का जवाब देना चाहिए कि आजकल के विज्ञान के युग में हम किस प्रकार विज्ञान और उसके आविष्कारों का भारत में उपयोग करते हुए इस देश की संस्कृति और परम्परा को भी साथ-२ अपनायें। उन्होंने यह भी कहा कि भारत के दार्शनिकों को चाहिए कि वह पश्चिम की नकल न करते हुए अपनी संस्कृति के जरिये ही इस देश की उन्नति करने का रास्ता दिखायें। उनके यह दो विचार मुझे इसलिए अच्छे लगे क्योंकि मैंने अपने अध्यक्षीय भाषण में इन्हीं बातों को बहुत विस्तार से सामने रखकर यही बताया था कि आजकल के संकट काल में भारतीय दर्शन सारे विश्व को रास्ता दिखा सकता है और इस पृथ्वी पर स्थायी शान्ति स्थापित कर सकता है। मेरा यह अध्यक्षीय भाषण १० दिसम्बर को ही छप चुका था और मैं उसकी छपी हुई प्रतियां हैदराबाद में दार्शनिकों को राजीव गांधी के भाषण से एक दिन पहले ही बांट चुका था। मालिक की मौज से श्री राजीव गांधी के प्रश्नों का उत्तर मेरे उस अध्यक्षीय भाषण में पहले से ही मौजूद था जो मैंने उन्हें मुद्रित रूप में दिया और जिसके आधार पर मैंने उनके बाद धन्यवाद और आशीर्वाद का भाषण दिया। मुझे प्रसन्नता है कि हमारे युवा प्रधान मन्त्री ने मेरी बातों को स्वीकार किया और मेरा आशीर्वाद भी लिया।

१९ से २३ दिसम्बर तक मैंने सभी अधिवेशनों के सत्रों की अध्यक्षता की और दार्शनिकों को खासकर मानवता धर्म का भेद बताकर परमदयाल जी महाराज और दाता दयाल जी महाराज के विचारों को दार्शनिक ढंग से बताया। मुझे इस बात की खुशी है कि हमारे देश के ही नहीं बल्कि यूरोप, अमेरिका, चीन और एशिया से आये हुए दूसरे देशों

के दार्शनिकों ने भी मानवता धर्म को मानव जाति के कल्याण का आधार माना।

मैं आपको यह बातें इसलिए बता रहा हूं क्योंकि मेरे परम गुरु परमदयाल जी महाराज ने खासकर अपने जीवन के आखिरी दो वर्षों में मुझे पत्रों के द्वारा जो कुछ लिखा वह आज सौफीसदी सत्य प्रमाणित हो रहा है। मैंने पिछले मासिक सन्देश में भी परमदयाल जी महाराज के एक पत्र का हवाला दिया था और आपको बताया था कि किस तरह से उनकी विचार-शक्ति और उनके दिये हुए संस्कार मुझे अपने कर्त्तव्य का पालन करने में कदम-२ पर मदद दे रहे हैं। ऐसा लगता है कि मानवता धर्म की सच्चाई जगह-२ पर अपने आप ही फैल रही है और समाज एवं विश्व के कोने-२ में मानवता की प्यास को गंगा के नीर की तरह तृप्त करती जा रही है।

प्यारे सत्संगियो मैं समझता हूँ कि तुम्हारे प्यार और तुम्हारी परमदयाल जी के प्रति श्रद्धा और विश्वास के कारण ही मैं अपने इस कर्त्तव्य के पालन करने में सफलता का अनुभव कर रहा हूँ। मैंने पहले भी आपको बताया है कि जब मैं इस मासिक सन्देश को अपने शब्दों में लिखकर आपको सम्बोधित करता हूँ तो ऐसा लगता है कि मैं आपके सामने बैठा बातचीत कर रहा हूँ। मुझे पूरा विश्वास है कि आप भी इसी भावना से हर महीने मासिक सन्देश पढ़ने के लिए उत्सुक रहते हैं और उम्मीद करते हैं कि इसके ज़रिया आपको खुशी और आनन्द मिलेगा। मैं चाहता हूँ कि यह मासिक सन्देश भी आपके जीवन में आगे बढ़ने के लिए और लोक—परलोक दोनों को सफल कराने के लिए मदद देगा।

हाँ तो मैंने पिछली बार समय और स्थान की कमी

की वजह से 'तपः' यानि कि तपस्या की व्याख्या नहीं की थी। इसलिए मैं इस मासिक सन्देश में दौरे की सूचना देने से पहले तपस्या के सम्बन्ध में दो शब्द और कहना चाहता हूँ।

'तपः' असल में एक ऐसा अनुशासन है जिससे हमारा शरीर, हमारा मन शुद्ध और स्वस्थ हो जाते हैं। जब तक शरीर स्वस्थ न हो किसी प्रकार का धर्म और कर्म नहीं किया जा सकता। सन्तमत में भी शरीर को स्वस्थ रखने की हिदायतें हैं। परमदयाल जी महाराज ने अपने सत्संगों में शारीरिक तप में ब्रह्मचर्य को सबसे ऊँचा बताया है। उन्होंने बहुत से सत्संगों में यह साबित किया है कि जो व्यक्ति बहुत छोटी आयु में ब्रह्मचर्य को क़ायम न रखकर अपनी शक्ति खो बैठते हैं वह बड़े होकर न ही सिर्फ अ क रोगों के शिकार होते हैं बल्कि उन्हें शान्ति भी नहीं मिलती। इसलिए उन्होंने शारीरिक और मानसिक ब्रह्मचर्य रूपी तप की बहुत प्रशंसा की। इससे पहले कि मैं आपको शारीरिक, मानसिक और वाणी की तीन प्रकार की तपस्याओं के बारे में कुछ बताऊँ, इस मासिक सन्देश में ख़ासकर रूहानियत में तरक्की करने के लिए ब्रह्मचर्य तप के बारे में थोड़ी सी व्याख्या देना ज़रूरी समझता हूँ।

सन्तमत सन्यासवादी नहीं है क्योंकि यह सहज मार्ग है और गृहस्थ में प्रेम का अनुभव करते हुए और कामवृत्ति में ज़रूरत से ज़्यादा अपनी शक्ति को क्षीण न करते हुए सत्संगी रूहानियत में उन्नति कर सकता है। सभी धर्मों में मालिक को मिलने के लिए अहिंसा के साथ-२ ब्रह्मचर्य तप का पालन करना बहुत ज़रूरी समझा गया है। भारतीय संस्कृति में, ख़ासकर सनातन धर्म में, चार आश्रमों की व्याख्या इसलिए की गई है कि मनुष्य अपने शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा चारों का बराबर विकास करता चला

जाये। यह चार आश्रम ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास कहे जाते हैं। पहले २५ वर्ष ब्रह्मचर्य का पालन करने से शरीर हृष्ट-पुष्ट होता है और उसमें इतनी शक्ति संचित हो जाती है कि वह सौ वर्ष तक पूरी आयु भोग सकता है। इसलिए प्राचीन काल में उसे ९ वर्ष की आयु से २५ वर्ष की आयु तक गुरु के आश्रम में रहकर और ब्रह्मचर्य का पालन करके शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती थी। इस शिक्षा को प्राप्त करने के बाद ही वह धन कमाने के योग्य हो जाता था। यह शिक्षा या विद्या उसके मन को भी गढ़ती थी और उसे योग्य पात्र बनाती थी। इस योग्यता के कारण ही वह धन कमाकर पहले पुरुषार्थ 'अर्थ' को पा सकता था। अर्थ के पाने से वह गृहस्थ में काम की तृप्ति कर सकता था और धर्म का पालन कर सकता था। विद्या के इसी उद्देश्य को किसी ऋषि ने संस्कृत में इस प्रकार लिखा है :—

विद्या ददाति विनयं विनयं ददाति पात्रताम् ।
पात्रत्वाद् धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम् ॥

दूसरे शब्दों में विद्या मनुष्य को विनयशील बनाती है। विनयशील व्यक्ति योग्य और पात्र बन जाता है। योग्य बनने से उसे धन की प्राप्ति होती है और धन कमाने से ही वह धर्म का पालन कर सकता है। धर्म का पालन करने से उसे सुख की प्राप्ति होती है। इसलिए परमदयाल जी महाराज ने सत्संगियों को हमेशा यही उपदेश दिया कि पहले वह अपना ध्यान अपनी रोज़ी कमाने की तरफ लगायें। सन्तमत में खास बात यह है कि सच्चा सद्गुरु वही है जो सत्संगियों के पैसे पर निर्भर नहीं होता और अपनी रोज़ी खुद कमाता है। इससे यह ज़ाहिर होता है कि संसार के सुख के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए शिक्षा के ज़रिये

धन की प्राप्ति से धर्म पर चलकर सुख प्राप्त हो सकता है। दूसरे शब्दों में ब्रह्मचर्य का पालन करने से गृहस्थ सुधरता है और मनुष्य लौकिक सुख को प्राप्त करता है। केवल इतना ही नहीं वह धर्म पर चलने के कारण मोक्ष की तरफ भी बढ़ता है और परलोक बनाने में भी सफल हो सकता है। सनातन धर्म और सन्तमत की दृष्टि एक है। जैसे सनातन धर्म में चार आश्रमों में से पहले आश्रम का पालन करने से लोक और परलोक दोनों बन जाते हैं उसी तरह से सन्तमत में भी मन की शान्ति के लिए यानि कि लौकिक सुख के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करना जरूरी है। केवल इतना ही नहीं बल्कि परमदयाल जी ने अपने अनुभव से यह भी बताया है कि जो लोग छोटी आयु में ब्रह्मचर्य की शक्ति को खो बैठते हैं उन्हें सुरत-शब्द योग के अभ्यास में भी उस प्रकाश का अनुभव नहीं होता जो आनन्द देने वाला है। लेकिन अगर ऐसा व्यक्ति भी सद्गुरु की आज्ञा में चलता हुआ संयम का पालन करे तो उसे प्रकाश का अनुभव हो सकता है। इस प्रकार सन्तमत की दृष्टि से भी लोक और परलोक दोनों में सफलता पाने के लिए ब्रह्मचर्य का तप बहुत मदद देता है। इस विषय में अगले मासिक सन्देश में मैं आपको यह बताना चाहूँगा कि सुमिरन, ध्यान, भजन में ब्रह्मचर्य का तप ख़ास मदद कैसे देता है।

जहाँ तक दिसम्बर और जनवरी के महीनों के दौरे का सम्बन्ध है, मैं इसी मासिक सन्देश में आपको संक्षेप में कुछ बतलाना चाहता हूँ। २३ दिसम्बर को हीरक जयन्ती के अन्तिम सत्र के बाद हम कार द्वारा ५ बजे रवाना होकर ९ बजे रात को हनमकुण्डा पहुँचे। वहाँ पर २४ दिसम्बर को दो सत्संग हुए जिसमें हनमकुण्डा, वारंगल और आसपास के इलाकों से आये हुए सत्संगियों ने भाग लिया। दोनों

सत्संग प्रभावशाली रहे। इसके बाद दो दिन हम हजूराबाद और करीम नगर रहे जहाँ पर सत्संगियों ने काफी संख्या में सत्संगों से लाभ उठाया। २८ दिसम्बर को हम रेल द्वारा रात को सिकन्दराबाद से रवाना होकर २९ दिसम्बर प्रात:काल ४ बजे बलारशाह स्टेशन पर पहुँचे। यहाँ पर हमें श्री कमलेश्वर राव और उनके साथी अहेरी ले जाने के लिए मौजूद थे। उन्होंने तीन मोटर गाड़ियों का प्रबन्ध किया था। बालारशाह में थोड़ी देर रुक कर कुछ नाश्ता करने के बाद हम कारों के द्वारा अहेरी के लिए रवाना हो गये। मैंने आपको पिछली बार भी बताया था कि अहेरी के लोग बहुत ही सरल तथा श्रद्धालु हैं। अहेरी भारतीय स्वतन्त्रता से पहले एक रियासत थी और इस पर राजाओं का राज्य था। श्री कमलेश्वर राव ने १९८४ में इस नगर में अन्तराष्ट्रीय मानवता संस्थान स्थापित की थी और उन्होंने वहाँ पर मानवता मन्दिर निर्माण करने का निश्चय किया था। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि अहेरी की संस्था ने इस दिशा में काफी प्रगति कर ली थी।

अहेरी नगर से बाहर ही सत्संगियों की काफी संख्या हमारे स्वागत के लिए मौजूद थी। वे लोग एक मील तक हमारे साथ पैदल चले और अपनी परम्परा के अनुसार एक जलूस के रूप में हमें उस स्थान पर ले गये जहाँ सत्संगों का आयोजन था। वहाँ पहुँच कर हमें यह सूचना मिली कि अहेरी राजघराने के एक युवा राजकुमार श्री धर्मराव ने मानवता मन्दिर के निर्माण के लिए एक बहुत ही अच्छे स्थान पर दो हजार वर्ग भूमि का अनुदान दिया है। श्री धर्मराव स्वयं मुझसे मिले और उन्होंने बहुत आदर से सभी सत्संग सुने।

अहेरी के सत्संग बहुत ही सफल रहे। हजारों की

संख्या में सत्संगी मौजूद थे। मैं यह कह सकता हूँ कि इन सत्संगों में जो आध्यात्मिक धारा सत्संगियों के कल्याण के लिए सहज में बही और जिसमें मुझे भी सहज समाधि का अनुभव हुआ उसका श्रेय श्री शब्दानन्द और कुमारी साधना के शब्द पढ़ने को जाना चाहिए। परमदयाल जी की कृपा से ये दोनों सत्संगी सच्चे दिल से परमदयाल जी के मिशन को सफल बनाने के लिए रात-दिन प्रयास कर रहे हैं। सभी सत्संगियों को इनसे प्रेरणा लेनी चाहिए।

अहेरी में तीन दिन के दौरान में और भी गतिविधियाँ चलीं उनमें से दो घटनाएँ उल्लेखनीय हैं। दूसरे दिन ही अहेरी मानवता मन्दिर के भवन निर्माण के लिए दो हजार वर्ग भूमि पर सत्संगियों के बीच में मैंने भवन का शिलान्यास किया। यहाँ पर श्री धर्मराव भी मौजूद थे। उसके फौरन बाद-श्री धर्मराव मुझे अपने उस नये विडियो सिनेमा घर पर ले गये जहाँ उन्होंने मेरे से उद्घाटन कराते हुए उस नये भवन पर शिलालेख लगवाया जिसमें उन्होंने यह अंकित कराया था कि इसका उद्घाटन होशियारपुर के मानव दयाल जी से कराया गया। मैं आपको ये बातें इसलिए बता रहा हूँ कि परमदयाल जी की शताब्दी के सिलसिले में हमने यह निश्चय किया था कि १९८५-८६ में परमदयाल जी का स्मारक ग्रन्थ छपवाया जायेगा, देश विदेश में सन्त सम्मेलन और सत्संग आयोजित किये जायेंगे और नये स्थानों पर मानवता के केन्द्र खोले जायेंगे। आपको यह याद रखना चाहिए कि सच्चाई का प्रचार करने वाला मानवता मन्दिर होशियारपुर किसी भी बाहर के केन्द्र को अपने अधीन नहीं समझता। जहाँ-२ पर ये केन्द्र खोले गये हैं और खोले जा रहे हैं उनका सारा प्रबन्ध वहाँ के रहने वाले लोगों का होता है। परमदयाल जी महाराज ने ऐसा आदर्श रखा था

कि मानवता मन्दिर दूसरे डेरों की तरह सम्पत्ति और भवनों का साम्राज्य नहीं बन जाये। सभी केन्द्रों में परस्पर प्रेम और सहयोग का रिश्ता है। केन्द्रों की जरूरत इसलिए है कि सभी लोग एक स्थान पर इकट्ठे होकर सत्संग का लाभ उठा सकते हैं। इस प्रकार हम पहली जनवरी प्रातःकाल ५ बजे बतारशाह से इटारसी के लिए रवाना हो गये। पहली दूसरी और तीसरी जनवरी को इटारसी में सत्संग आयोजित हुए। यहाँ पर परमदयाल जी के परम भक्त श्री जोगेन्द्र सिंह ने ही सत्संगों का सिलसिला बहुत पहले से ही शुरू कराया था। इनके अलावा अटारसी में सैकड़ों सिन्धी श्रद्धालु सत्संगी भी रहते हैं। श्री जोगेन्द्र सिंह जी के सुपुत्र श्री चिरंजीत सिंह इटारसी में पंजाब साईकल स्टोर चलाते हैं और जोगेन्द्र सिंह जी अब वानप्रस्थ अवस्था में रहते हैं। इस परिवार पर परमदयाल जी की शिक्षा की गहरी छाप है और यह एक आदर्श मानवता सत्संगी परिवार है। ऐसे सैकड़ों परिवार हैं जो परमदयाल जी के असूलों पर जीवन व्यतीत कर रहे हैं। जैसा मैंने पहले कहा इटारसी में बहुत से सिन्ध से आये हुए, मध्य प्रदेश में बसे हुए सिन्धी सत्संगी हैं। इसी प्रकार कटनी में भी बहुत से सिन्धी परिवार मानवता धर्म के अनुयायी हैं उन परिवारों में से सेठ हेमनदास का परिवार सेठ रिजमल का परिवार और सेठ अर्जुन दास का परिवार उल्लेखनीय हैं। सेठ हेमनदास के परिवार में से उनका युवा सुपुत्र विष्णु मर्चेंट एक आदर्श सत्संगी हैं। अपने पिता के स्वर्गवास होने के बाद उसका मानवता मन्दिर से और मेरे से बहुत गहरा सम्बन्ध हो गया है। विष्णु मर्चेण्ट भी कटनी से इटारसी पहुँच गया था क्योंकि इस दौरे में कटनी का कोई प्रोग्राम नहीं था। तीनों दिन दो सत्संग चिरंजीत के घर पर हुए और एक सत्संग सिन्धी श्रद्धालु सुन्दर दास के

घर हुआ। इन सत्संगियों में प्रेम और श्रद्धा कूट-२ कर भरी हुई हैं। हम सब को इटारसी के लोगों की श्रद्धा प्रशंसनीय लगी।

इस मासिक सन्देश में मैं दौरे की सूचना केवल यहाँ तक ही दे सकता हूँ। इसी दौरे का आगे का हाल अगले मासिक सन्देश में दिया जायेगा। एक सत्संगी ने मुझे लिखा है कि उनको दौरे की सूचना बहुत अच्छी लगती है और वह चाहते हैं कि हर महीने के दौरे का विवरण अगर उसी महीने नहीं तो उसके दूसरे महीने अवश्य छाप दिया जाये। मैंने उसका उत्तर देते हुए बताया था कि ऐसा सम्भव नहीं है। उसका कारण यह है कि जब तक दौरा समाप्त न हो तब तक सूचना लिखी नहीं जा सकती। समाप्त होने के बाद भी मासिक सन्देश में सत्संगियों को चिताने के लिए सन्तमत के विषयों पर भी लिखना पड़ता है। वैसाखी के विशेषांक में तो दौरे की सूचना का कोई स्थान भी नहीं मिल सका इन कारणों से हम आपको सत्संगों के दौरे के प्रोग्राम में इस प्रकार सन्तुष्ट नहीं कर सकते कि दौरे के दूसरे महीने में ही यह विवरण दे दिया जाये। इसके लिए मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ कि आप जब भी दौरे की सूचना मासिक सन्देश में पढ़ते हैं आपको कुछ न कुछ आनन्द मिलता होगा। हम यह विचार कर रहे हैं कि एक या दो महीने में दौरे की सूचना को अलग कर दिया जाये। मैं तो आपको मासिक सन्देश में रूहानियत का सन्देशा ही दिया करूंगा। जहाँ तक दौरे का सम्बन्ध है मेरे साथ दौरे पर चलने वालों में से कोई व्यक्ति दैनिक डायरी के रूप में दौरे का विस्तृत विवरण तैयार करेगा। इस प्रकार हम आपको अधिक से अधिक और नाजातरीन सूचनाएँ देने के साथ ही मासिक सन्देश का आध्यात्मिक स्तर भी ऊँचा कर सकेंगे।

इन शब्दों के साथ मैं आप सब को इस माह के लिए सुखी, स्वस्थ, सम्पन्न एवं शान्तिमय जीवन की सदभावना भेजता हूँ। आप सब को मेरा हार्दिक प्यार, आशीर्वाद और राधास्वामी !

आपका फकीरमय
मानव

जरूरी सूचना

बहुत से सत्संगियों ने यह इच्छा प्रकट की है कि और संस्थाओं की तरह मानवता धर्म के सत्संगियों के भी जगह-२ पर मानवता कालोनी या नगर बसाए जावें, जिसमें रूहानियत में आगे बढ़ने के लिए, सत्संगी एक ही कालोनी में मिलजुल कर रहें और अपने परिवार का पालन-पोषण करने के साथ-२ परमार्थ का भी काम कर सकें। इस बात को ध्यान में रखते हुए सबसे पहले फ़रीदाबाद में मानवता कालोनी की योजना बनाने का विचार है। वहां पर देहली से ३० किलोमीटर की दूरी पर फ़रीदाबाद में सुन्दर बटरवन लेक के पास कुछ एकड़ भूमि इस योजना के लिए मिल सकती है। इस कालोनी में ढ़ाई सौ गज के प्लाट सत्संगियों को दिए जा सकते हैं। सस्ती कीमत पर सरकार की सहायता से प्लाट बीस हज़ार के लगभग पड़ेगा, जिसमें डिवैलपमैंट का खर्चा भी सम्मिलित होगा। यह सूचना इसलिए दी जा रही है कि जो सत्संगी मानवता कालोनी में प्लाट खरीदना चाहें वे मई के आखिर तक एक पत्र श्री के. पी. वर्मा को निम्नलिखित पते पर भेज दें :—

श्री के. पी. वर्मा
एडीशनल सेशन जज
ई. ए. सी. फ्लैट नं. २
१६-ए, राजपुर रोड, देहली।

आपके पत्र आने के बाद जून में एक तारीख निश्चित कर दी जायेगी उस तारीख को प्लाट लेने वालों को प्लाट दिखा दिए जायेंगे। अभी तो केवल पचास प्लाटों की व्यवस्था हो पाई है। आगे फिर देखेंगे। जनरल सेक्रेटरी

उज्जैन (मध्य प्रदेश) की जनता में परमसन्त हुजूर मानव दयाल जी महाराज के प्रति अगाध श्रद्धा-भक्ति है जो न केवल सत्संगी जन में, अपितु वहाँ की परम्परागत सनातनी जनता में भी समान रूप से विद्यमान है।

गत जनवरी १९८६ के मध्य प्रदेश के अपने दौरे के क्रम में महाराज जी जब तराना (उज्जैन) पहुँचे तो उज्जैन और आस-पास के सत्संगी एवं जन सामान्य की अपार भीड़ महाराज जी के दर्शन-सत्संग के लिए उमड़ पड़ी। महाराज जी ने उनकी अगाध श्रद्धा-भक्ति भावना देखकर अपने अत्यन्त दया और वत्सलता की सरिता बहा दी और बड़े प्रेम से पाँच प्रभावशाली सत्संग दिये।

उज्जैन के प्रख्यात कवि साहित्यकार श्री 'शिव' जी उपाध्याय द्वारा महाराज जी को समर्पित प्रस्तुत विशेष रचना उज्जैन की प्रेमी जनता की श्रद्धा-भक्ति भावना का ज्वलंत प्रतीक है। इस रचना की विशेषता यह है कि इसकी प्रत्येक पंक्ति के प्रथमाक्षर के योग से महाराज जी का पावन नाम लब्ध होता है।

प्रस्तुत रचना में श्री 'शिव' ने सत्संग का जो जीता-जागता चित्र एवं मधुर शब्द-पाठ की प्रभावोत्पादकता का हज़ारों-हज़ार भक्त हृदयों पर पड़े गंभीर प्रभाव का जो मार्मिक वर्णन किया है, वह सराहनीय है।

परमपूज्य पं० मानव दयाल जी शर्मा

डाक्टर ऑफ फिलासफी (अमेरिका)

होशियारपुर (पंजाब) की सेवा में सादर

'भाव-सुमन'

पंडित जी के चरण कमल में, वन्दन करने आये।

डिगे नहीं विश्वास हमारा, भाव यही भरलाये॥

तन मन धन सब गुरु सेवा में, अर्पित करने वाले।

मानवता की राह दिखाकर, मनसा हरने वाले॥

नव जीवन, विश्वास, दयामय, दिया आपने प्यारा।

वन्दनीय अभिनन्दनीय है, वचनामृत की धारा॥

दया दान देकर कितनों को, अपने हृदय लगाया।

याद रहेगा सदा साधना-स्वर में जो भी गाया॥

लक्ष्य विश्व कल्याण आपका, सतत सनातन धर्मी।

जीवन की हर डगर सुहानी, करने वाले मर्मी॥

शकट हमारा भव सागर से, प्रभुवर पार लगाना।

र्माशर्मा में सदा समाहित, एक रूप हम जाना॥

विनीत :

रचयिता—शिव उपाध्याय सत्संगी समाज तराना

परमसन्त हजूर मानव दयाल जी महाराज
डा० ईश्वर चन्द्र शर्मा का
मई 1986 के दौरा कार्य-क्रम का विवरण

रविवार 18-5-86 —9 बजे प्रात: बुलंदशहर आगमन।
आदर्श सक्सेना, 13, शेख सराय।
3-30 सायं अलीगढ़ के लिये प्रस्थान।

रविवार 18-5-86 —4-30 सायं अलीगढ़ आगमन।
मेजर सोम दत्त गोविला,
इण्डेन गैस एजेन्सी,
रामघाट रोड, अलीगढ़।
सत्संग सायं 6 बजे

सोमवार 19-5-86 „ प्रात: 8 बजे
सायं 4 बजे दयाल नगर को प्रस्थान।
सत्संग सायं 6 बजे दयाल नगर।

मंगलवार 20-5-86 प्रात: 6 बजे खण्डेया को प्रस्थान।
भूपेन्द्र मणि जी, खण्डेया।
सत्संग प्रात: 10 बजे
11 बजे दिन अलीगढ़ को प्रस्थान।
सायं 6 बजे प्रवचन, रोटरी क्लब,
अलीगढ़।

बुधवार 21-5-86 —प्रात: 5 बजे दिल्ली को प्रस्थान।
प्रात: 10 बजे दिल्ली से अमीन के
लिए प्रस्थान।
2 बजे अपराह्न अमीन आगमन।
सत्संग सायं 6 बजे।

ENGLISH SECTION

Of

Manav Mandir

A Paper devoted to the Social, Cultural and Spiritual Welfare and uplift of Mankind all over the World.

BE MAN

May 10th, 1986.

MANAVTA MANDIR

Hoshiarpur, (Pb.) India.

Data Dayal Maharshi
Shivbrat Lal Ji Varman
M A., LL.D.

Message of Peace

Designed for Thoughtful People of Devotional Tendencies

DISCOURSE I

Peace is perfection. A state of equipoise free from wants or desires.

Perfection implies wholesomeness while imperfection implies unwholesomeness.

From perfection proceeds perfection. Perfection can never give birth to imperfection.

Perfection is not only an ideal that exists in idea but it is reality. It is substantiality of the substances, the reality of realities, the truth of all truths, the essence of what was, what is and what will be.

Nothing can be added to or subtracted from perfection. It can neither be multiplied nor divided. It is infinite It is all in all and it is all, all the while.

If you subtract anything from it or add anyt ing to it, it is neither decreased nor increased just as infinity in mathematical notation is neither decreased nor increased by subtracting from or adding anything

to it. It is whole as a whole should be.

A man is born from a man. Nothing short of a man is born from a man and so is it in everything that is perfect. The realization of perfection may be gradual but in fact it is perfection and it leads to perfection.

If anything has come out of something you must be sure th t the outcoming entity is the same as it was inherent or existent in its source.

If God is the Perfect as you should believe, all that emanates from God must necesarily be perfect. There is no imperfection on it. If God is perfect you are perfect too. You can never be imperfect ; for the source of which you are born is perfection itself.

It is in the perfection that peace ought to be sought for, for it is only there and there alone and no where else. Peace and perfection or both synonymous in significance though not in roots.

DISCOURSE II

MEANS TO AN END

All that exists is perfect it is in peace with itself ; there is no warfare at all, for peace implies the natural condition of soul's beatitude* and war means corruption, decrepitude** and disgrace.

Grace is another name of peace. In grace there is no disgrace. Peace is rest and so there is no unrest in it.

In light there is no darkness ; in pleasure, there is no pain.

---

*Beatitude—Happiness of the highest kind.

*Decrepitude—State of being worn out with age.

Very few people indeed are able to comprehend the subject - matter of these pithy* sayings.

I say there is no death, no misery, no decay, no illusion but to an ordinary intellect they seem to be apparent. A man finds himself surrounded with these on all sides and is apt to deny these assertions with vehemence and zeal.

Nevertheless no man wants to die, no one wishes to be disgraced ; there is no desire inherent in man to fall sick. All are intent on being healthy, happy and powerful.

Why is it so ? For not only the idea of perfection lies hidden in the innermost cavity of man s mind but it is in its very nature to be so and it is in reality so.

A fish cannot live out of water for water is its element and it is made of water ; so no man wants to be imperfect. Perfection is the element of which the man is made. Take away the idea of perfection from his mind and the result will be the same as when you take out the fish from water.

Will you die ? No, for the very idea of death is foreign to our conception.

Death is only an idea. You are an ideality and every sort of ideation proceeds from you. You are a source. When you think of death you stand quite apart from it as if it were something different from you and yourself different from it.

A man who is bent upon committing suicide, in reality does not destroy himself for destruction is an impossibility. Enter into the depth of his mind and

---

*Pithy—Forcible ; Strong ; Energetic.

you will find that he is simply trying to alter the unpleasant condition of existence he had fallen a victim to, It is as well the case with misery, pain and sickness, etc., etc.

If it is so then, where is peace to be sought for? It is ever within you that it should be sought. It is there and nowhere else. It lies within you and not without you.

DISCOURSE III

MEANS TO AN END—(*continued*)

End is different from its means and means are different from the end.

Means and end being different, a man shonld always try to differentiate one from the other.

Proper study of everything is Man and Man only.

Man is the end and sum total of everything that exists. Means are resorted to with a view to comprehend the Man. It is the end and not the means.

People of ordinary intellect make confusion between the means and the end and neglecting the end, are lost for ever and ever in the labyrinths of intellectuality which was only a means. Thus intellect becomes a lengthening chain of bondage and when a man gets himself bound with it, it is difficult to rid himself from its grasp.

Means have been furnished in nature to justify the end ; as end justifies the means. But if there is confusion between these two then end is lost for ever and the means prove to be the fruitful source of trouble.

Man is the end and the means employed are the implements and medium to realise his potentialities

possibilities.

In reality these are three, *viz.*, essentiality, intellectuality and physicality. These three are nothing but the instruments which have been supplied by nature to man and which serve the purpose of realising, intuitioning and feeling the end which lies hidden in himself and which he himself is.

Essentiality is the supreme factor of these three means. It is the pivot on which the two others are hinged.

Least these terms prove ambiguous, it is better to describe them at length at the very outset. These three means are three sorts of bodies or dwellings in which the real man is housed. It is through these that surcharging them with his force he serves his purpose and attains his aim.

In Sanskrit these three have been termed 'कारण शरीर' 'सूक्ष्म शरीर' and 'स्थूल शरीर' or Causal, Subtle and Gross bodies.

Param Sant Param Dayal
Faqir Chand Ji Maharaj

SUBSTANCE OF SECRET

Transcend upward to the sky (Top head)
why dwell at lower stage !
Lower, lower the company of the low ;
with feeling low intentions low !
Divorce bad, have the True company ; (Sat-Sang)
why bear sorrows and joys of this illusive world !
Downward Path, is of the world ;
Saints follow the Path upward !
He, who traverses upward path,
finds the Lord of the Self !
Whosoever falls in doubt of the world,
remains in bondage of reincarnation
Why dwell in doubt of illusion !
transcend upward to the sky.
Up is the wave of the Ganga ;
up flows the water of Yamuna,
Up is the steam of Saraswati ;
pure, fathomless and tranquil !
Lower exist all sorrows, afflictions
lower illusion causes all distresr !

The worldly engrossed in rituals ceremonies ;
the illusion-ridden know not the secret.
Why scorch in Trinity heat
transcend upward to the sky !
Up is the light of the Sun ;
up the light of the Moon.
Up is the treasure the Knowledge ;
up the source of the Truth.
Up is the Cosmic Person ;
up is the Omkar !
Up is the Realm of the Shunnya ;
up is the Sohamkar !
Lower are is sensual pleasures ;
lower exist hopes and cravings !
Whosoever dwells at lower stage ;
remains he ever dejected !
Why to aspire for this low path !
Transcend upward to the sky.
Up is the Abode of Truth ;
up the Profound and the Un-seen !
Up the Radhaswami Name ;
transcend up and see thyself !
Lower, prevail Kaal, and Karma ;
Lower the sin of doubt, deception.
Illusion lower raids
The Self not realised due to delusion
Why narrate lower tale !
Transcend upward to the sky !

I have never entered into the lamentation on NAAM-DAAN. You would say I have used the word lamentation. Lamentation means grief. People lament

only when they are grief-stricken. Really by doing this work of Guidance I suffer. None should misunderstand that by doing this work I face difficulty in transceeding the upward path within. I have spent whole of my life in this path of inward meditation. At present, I transcend far above all the lower stages of inward practice. Now it is not essential for me to traverse the stages of "SAHAS-DAL-KAMAL," "TRIKUTI," "SUNNA," "MAHA-SUNNA", "BHANWAR-GUFA" to reach the highest realm, because, my Surat has gained sufficient experience of these stages and know the Reality, in a fraction of moment and without any struggle or difficulty my Surat reaches the abode of "SELF". As I was to impart "NAAM" to Pandit Ji, I had to traverse all these lower stages in order to explain them to Pandit ji. Therefore, I say that "NAAM-DAAN" is a lamentation." For me, the lower stages have no significance. My ideal is the highest realm of "SAT", invisible and un-named.

The worldly people cannot understand the sublime-Truth, but you are a Sar-Bhedi Brahmin. You have come to me for "NAAM-DAAN". It was very essential for me to transcend through all the lower stages in order to experience a fresh for four or five days. As His Holiness Hazur Data Dayal Ji Maharaj has written in the above hymn, 'Transcend upward to the sky ; Why dwell at lower stages ?' Last night and today morning, I have been transcending upward. I am a practical man. I do not say anything, which I have not myself examined and experienced. There are many

stages of "NAAM-DAAN." "NAAM-DAAN" means the attainment of suprememe-bliss and peace. For the attainment of pleasure at physical levsl or at the stage of "ANNAMAYA-KOSH," the Sadhana is different for the attainment of pleasure of intellect the practice is different, for the attainment of pleasure of life-energy the Sadhan is different and to attain Supreme-Bliss and Sublime Peace the Sadhan is different. The "NAM" leads the seeker to a stage where neither exists Parmatma (Lord) nor Atma (the soul). If soul continues to exist, the cycle or process of creation must continue. The work of Supreme-Soul is also creation. If some body succeeds to reach the stage of Supreme-Soul with the help of Sadhana, that means he has attained a stage which is the source of creation. Soul itself is a creation of the Supreme-Soul, but soul as a separate entity is capable of creating its own world and then suffers or enjoys it. The "NAM" whish His Holiness Data Dayal Ji Maharaj imparted to me, I have realised it with a lifelong inward meditation. This "NAAM" leads the object which dwells in this body to highest stage beyond "PIND", "ANDA", "BRAHMAND", "ATMA", "PARMATMA" and "SHABDA-BRAHM" Whatever I say is based upon my personal experience. Sant Kabir writes in one of his hymns.

Became pebble of path, renouncing the pride !
Renouning greed attachment ; desire, then Self
NAM attained.
What happened, if became pebble, troubling the
travellers !
Sadhu should be like ash smeared upon body !

What happened, if became ash, it flies and falls
upon body.

Sadhu should be as clear water, crystal !
What happened, if became water, which becomes
hot and cold.

Sadhu should be as, Lord, Himself !
What happened, if become Lord, who creates
and sustains.

Sadhu should become pure remembering the Lord !
What happened if became pure, the pure needs
space

Free from pure and impure, such Sadhu is some
one rarest.

In this hymn, Kabir directs us to go beyond pure and impure by remembering NAM. I have been the worshipper of "NAM" and I wish to become pure by remembering the Lord. Oh SAR-BHEDI Brahmin, do you have the desire to attain this stage ? Who desires for this highest stage ? I had a desire for this stage. I have not been defected by the lower stages, because I had a desire to know my original Abode from where I have come to this world. So, the real "NAM" is for our return to our original abode. This is the real "NAM-DAN". I have known the way of my return to my Original Home. I have not yet reached there. but now I am covering the last stage. Many troubles and hindrances come in the way and the biggest hindrance is this imparting of "NAM-DAN". To become Guru and to impart "NAM" is the biggest hindrance. It is due to this fact that I do not impart "NAM" to anybody. Let me make it clear to you that man is always ridden by worldly desires ; still he thinks that

he does not have any desire, because he himself fails to analyse, whether he has any desire or not. To examine your position, when you sit for inward meditation or Sadhna, which what types of thoughts feelings and forms are created by your mind ? Your inner feelings visions and thoughts would prove you that you still have desires. For this purpose you need not go to anybody to ask. In stead, you study your dreams. What are these dreams ? There are different impressions and suggestions from previous life and of this life which are imprinted upon our subconscious-mind. When physically yon are at rest, these impressions end suggestions of your sub-conscious mind get magnified and appear to you in different forms, colours and scenes. If these impressions and suggestions of your subconscious mind are active, then "NAM-DAN" is essential for you. All these impressions of previous life and of this life can be mitigated by muttering the spoken-word or "NAM". He who repeats "NAM" attentively and regularly, his mind becomes still. But if this word-spoken or "NAM" is not pregnant with an impression of highest spiritual stage, or you do not have any thought about the Sublime Truth in your mind, then mere repetition of "NAM" or word spoken would not help you. If this Word-Spoked or "NAM" carries with it the impression of that Absolute-State or of our Original State, it would positively have its impact upon our Sub-conscious mind, in the same way as the word Lemon brings water in our mouth. His Holiness Hazur Data Dayal Ji Maharaj had imparted to me the NAM "RADHASWAMI". The state of

that Absolute stage ur of our original Home is revealed in this "NAM" This word or NAM "Radhaswami" has been injected into my mind by His Holiness Hazur Data Dayal Ji Maharaj. I do not compel you that you should also use this NAM "Radhaswami" for your Sumiran. You have come for becoming a disciple and for "NAM-DAN". But I am not initiating you for becoming a Guru. I wish to perform my duty. Because I have realised the Absolute-state or my original state with the sumiran of Radhaswami NAM. I would suggest you, that you should also use the Nam Radhaswami for sumiran for controlling your mind. If somebody does not use the NAM Radhaswami and he used some other NAM, which also carries the impression of the Absolute state as imparted by his Guru, its repetition too would give him the same benefit which I have attained by repeating the word Radhaswami. Now, you see, how independent are the teachings of saints.

To illustrate my point of view, I give you an example. There is a woman. She has all the qualities of womanhood. She has the quality of becoming a wife and she has also the virtues of becoming a sister and mother. She has the qualities of Durga too. But, if we address this woman as mother, all her other qualities of becoming a wife and sister would stand relegated. A body may be grown up, would never entertain a thought, that his mother ever had the qualities of becoming a sister and wife To him his mother was and is ever a mother. Similar is the importance of "NAM" Word-Spoken for a novice. Alongwith the repetition of "NAM", the meditation

upon the Holy form of your Ideal is also essential. If you meditate upon the Holy-Form of your Ideal daily, but if you do not believe that this Holy-Form of your Ideal is the Absolute-Form, Un-uttered and Un-fathomable, you shall not be able to attain the Ultimate object of your life. Therefore it is absolutely essential, that a seeker must have his full faith and belief in the Holy-Form of his Guru Ideal upon whose form he meditates within. What, if you believe that your Ideal is Faqir Chand, or Maharishi Shiv Brat Lal Ji or Baba Sawan Singh Ji or Lord Rama who was born in Ayodhya, who married Sita and killed Ravana or Lord Krishna who used to play with the milk-maids, you would attain the highest stage. Your meditation upon the form of your Ideal in this way proves merely a social and religious ceremony. Therefore Kabir has worned the seekers ;—

Considering Guru a human being ;
such persons are blind.
Suffer they in this world ;
and further face the trap of Yama.
Accepted Guru a mere physical frame ;
recognized not the Sat Guru.
Sayeth Kabir, to such a devotee ;
Threefold afflictions delude ever.

If these two conditions are not fulfilled, you may continue your Sumiran and Dhyan throughout your life, you will not be able to liberate your self from the sackles of Kaal. This is the secret and Sublime-Truth which I have revealed to the world under the Will of Supreme Lord. When a seeker succeeds to develop his true faith and belief in the "NAM" and Holy-Form

of his Ideal, as explained above, within a period of six months, under laws of nature, his mind becomes pure. All the impurities of his mind vanish away. Thereafter comes the state of "MAHA-SUNNA" or the Tenth-Gate Below this state everyone is obliged to visualise different colours, forms and scenes according to his inner desires and to entertain different thoughts which also include the power of discrimination (Vivek). All the erudites and the learned people who indulge in approving or disapproving the different philosophies, are too much dominated by this power or intellect of diserimination. Unless they dispell all their views and thoughts about Ramayan and other scriptures, they cannot succeed to reach the Tenth-door. When a man meditates within, the impressions and suggestions of his previous life get activated. Sometimes he visualises such scenes in his mind as he might have been born in his previous life, appear before his mental eye and sometimes very evil and sometimes very virtuous thoughts, occur. These scenes, forms, colours and thoughts would never vanish, without the True-NAM which is Word and which is believed as the Incaration of the Sublime, Un-uttered, Uu-attainable, Un-fathomable and Un-named. True-faith in the sublimity of "NAM" and its Sumiran and regular meditation upon the Holy-Form of your Guru (who is not to be considered a human being) would lead you to the Tenth Door dispelling all impressions and suggestion of your previous life and of this life. This is "NAM" and its greatness, which I have explained to you without any reservations.

O ! SAR-BHEDI Brahmin ; your visit has definitely troubled me, but if you succeed to understand the Secret and if you get eternal joy and peace. I would welcome this trouble for your sake. I shall not be lacking in performiny my dutytowards you. When a devotee reaches the Tenth Door and dwells therein, he does not need Sumiran of Word NAM and meditation upon the Holy-Form of any Ideal. Thereafter Guru remains in the form of Shabda and His Feet in the form of Light within. But this Shabda and Light, would manifest only when your mind is clean. This Sumiran and Dhyan is essential for the purification of mind and it puts an end to the entire effect of "ANNMAY-KOSHA" and other lower stages. Then comes the stage of Anand-May-Kosha That is the stage of Bliss of Soul. O ! Sar-Bhedi Brahmin, that is your own "Self" Your "Self" is Light and your "Self" is Shabda itself. You are yourself Shabda and its part. Your "Self" or Surat has come down in this body and illusion (Maya) with its many folds which cover it it. This is not your case alone. Every individual has one and the same case. These fold of Maya are known by different names as ANNMAY-KOSH ! PYRAN-MAY-KOSH ; MANMAY-KOSH and JNANA-MAY-KOSH. Sumiran and Dhyan is essential for going above and beyond these four stages. The NAM that a devotee mutters must be imparted by Perfect Guru and the devotee must have faith that the "NAM" he repeates is a primordial "NAM" and not artificial and that it is "ABSOLUTE", Secondly, he should have faith that the Form he meditates upon is an Incarnation of the Supreme-Being, the Supermost-

Element and the Supreme Lord. By fulfilling these pre-requisites you shall attain the state of "SOHAM".

Spontaneously Graced me,
Gratitude to Gurudeva the Perfect Master.
Mercifully granted me refuge in feet ;
Transformed crow's faculty into that of swan.
Now Kal and Maya do not persist,
Attained the True-Salvation.

How a Guru Graces his disciple ? Guru reveals the secret in his Sat Sang. He solves the tangles and opens doors to Truth to those who beseech it. His Holiness, Hazur Data Dayal Ji did a great mercy on me and the method, the knowledge and the experience with which I have understand the Reality, has liberated me. The same method, the same knowledge and the same Secret, O ! Sar-Bhedi Brahmin, I have disclosed to you. Not only to you, but I have performed my duty towards the entire human race. I have revealed the Secret to the entire world in imparting "NAM" to you. Let those who earnestly wish to return to their Original Abode, be benefitted of it. Let those who are desirous of knowing the Truth, take lead at their earliest. Hazur Data Dayal Ji has ordained me :—

Thou hast come in the Human Form ;
Wearing the garb of Faqir,
Take the grieved beings ;
Alongwith Thee to Guru's Abode.
Souls are grieved from threefold afflibetions ;
Weak morbid and ignorant.
Thy duty is to be compassionate ;
And to impart NAM !

O ! Sar-Bhedi Pandit Ji, I have imparted "NAM" to you. Imparting "NAM" to you is simply a pretext in fact I have imparted "NAM" to the entire world. Whosoever would listen attentively to these tape recorded sermons or read them, would find way to the ultimate-Truth or to his Original-Home. He shall not have to go through any hardship. This is the favour, that Hazur Data Dayal Ji did to me, However, I am to say to those who are inquisitive of this line, that non can favour anybody nor anybody has power to do any favour to others.

Spoke the WORD in Sat Sang ;
disclosed all stages of ups and downs.
Liberated from theory, made me practical :
in the Secret of surat-Shabd.
The first stage of Sat Sangat ;
Second is the status of a sadhu
Third granted the state of swan ;
fourth the Sohankar.
Fifth escorted me to Sat-pad ;
made me perceive, invisible un-attainable.
Dispelled the mystery of tranmigration ;
in the Durbar of Radhaswami.

I ask my own Self, Faqir, tell, If the mystery of your own transmigration is dispelled ? Yes, the mystery of my own transmigration has been dispelled. How ? Since I learnt that my form manifests and helps different Sat Sangies at different places at different times, whereas I am never aware of such happenings, it has brought a great transformation in me. Thereafter I have attained the state of Hansa.

What is the status of a Sadhu ? I used to meditate and control my mind. When I got a control upon my mind, I started to visualise, different forms scenes and the Holy-Form of Guru Maharaj Ji. All these inner visions and forms entraped me and they were thought by me as the highest goal of life. The multiarious and pleasing thoughts of the stage of SEHAS DAL KAMAL and captivating scenes of the stage of TRIKUTI and SUNNA had their complete hold upon me, I believed them as the Reality and thus I was too much with them. But the day I learnt about the manifestation of my form to you, in your meditation, wakefulness and dream, I become conscious of the Truth. I was obliged to know about the Reality of my own inner visions, colours and forms. And my sincere search for the Truth proved that all these manifestations are the creation of Maya.

A few days ago, an old man came to me. As soon as he saw me, he embraced me and started-weeping. I enquired about him from him. He told me, "Baba Ji, I have been initiated by a house-holder Sadhu and I have been very regular in my meditation. One day, when I was meditating, I saw within a very big Tank (Man-Sarower). There was bright light and Moon was shining. Beautiful birds and swans were swimming in that tank. Flowers were bloosming all around that tank. There, in that beautiful scene I saw a Sadhu. When I got up from my meditation, I enquired from many people about the significance of my inner scene and about its truth. But none could satisfy me. Then a man told, that I should go to Hoshiarpur and attend Sat Sang of Baba Faqir Chand

Ji Thus I come here. When I saw you, I found that you are the same Sadhu, whom I saw in my meditatiou. The fact is that I did not know that man nor I know anything about this incident that he narrated to me. Such like instances and experiences have lead me beyond the realm of mind and Maya. Whatever, that man saw within they were all the samskaras of his previous life. He might have been close to me in the previous life and thus he came in my contact. Such experiences have granted me the state of a Hansa and proved that all the inner visions are the creation of mind. The roots of all these inner visions are our old samskar or old impressions and suggestions which remain dormant in our wakefulness. But when their Truth is realised the seeker is advised to dwell at the realm of Light and Sound, which is knows as Sohankar.

Today, if I express my greatfulness to Hazur Data Dayal Ji Maharaj, it is expected of me, because His Holiness Hazur Data Dayal Ji did a great favour to me. He lead me out of the net of illusion with a great skill.

Transcend upward to the sky (top head) ;
why to dwell at lower stage.
Lower lower, the company of low ;
with feelings low, intention low.
Abondon evil, be in the good company ;
why suffer, enjoy, this illusive world.

The sermons, I deliver from time to time, are useful to those who are desirous to know the Truth. Those who understand my sermons, are not required to under go the strains and stresses of inward practice.

It is said :—

"What to do, when Guru with thee."
Direct (downward) path, that of the world ;
Saints follow, path upwatd.
He who transcends upward ;
finds Lord of the "Self".

What is this upward path ? It is to transcend to the Anand-May-Kosh, leaving below the ANN-MAY-KOSH, PARAN-NAY-KOSH, MANU-MAY-KOSH and VIGYAN-MAY-KOSH. This ANAND-MAY-KOSH is known as SOHANG or your "SELF." Your SOUL is not your SELF. You are different, wheres your "SOUL" is different. In your soul there is Light and Sound. But, your "SELF" is that Element, which white dwelling in Light and Sound beholds the Light and listens to the Sound. Then what are "you" and "I" ? You are that supermost Element, which is said to be un-uttered, un-attainable, un-fathomable and un-named. At the very primary stage, the TRUTH was covered by un-Truth. That TRUTH is our Real "SELF". All else at the lower stages is the spectacle of Maya.

Downward Maya, downward Kaya (body)
Dowdward gras matter downward Saya (shadow)
Whosover falls victim to them :
Remains he in the bondage of world.

What is meant by this ? Those who believe that the inner, visions, colours, forms and scenes are True and they remain satisfied with them, considering them as their ultimate goal of life, can never go beyond the bondage of this world. He who is too much attached

with the Holy Form of Mahrishi Ji Maharaja, or with the form of Baba Faqir, or with the form of Baba Sawan Singh Ji or with the form of any other Guru, shall never go beyond the realm of Maya. Indeed, this Maya, is of higher stage. The net of Maya is very vast. Sant Tulsi Dass writes :—

The preception of mind goes to which event point ;
Understand o ! brother, tiss all illusion.

The uet of Maya is spread all around to an end, upto which our mind has its reach. You are to free yourself from this vast net of Maya. O ! Sar-Bhedi-Brahmin, I am disclosing the Secret to you with the view that you deserve it. I do not want to lack anything while performing my duty towards you. Now it is upto you to act upon it. You must do your duty as well. Because, your deeds would stand by your, where as my derds would stand by me :—

Fifth escorted me to Sat-Pad,
made me perceive, invisible, un-attainable.
Dispelled the mystery of transmigration ;
in the Durbar of Radhaswami.

I ask my own "Self" if my own mystery of transmigration is dispelled ? Yes, it is dispelled. How I meditate and transcend up-ward. My mental realms come to an end and "I" move into the realm of Light and Sound. However, in this Realm of Light and Sound, I try to identify that object or Element, which listens to the Sound (Shabd) and beholds the Light (Parkash) occasionaly, whet it gets merged in the Shabd while listening to the Shabd, it loses its own entity. It does not remain aware of Light and Sound. Light and Sound do not exist for it at that highest stage, or

say this object while losing its own Entity becomes a part and parcel of Light and Sound at the stage. However, when I become Conscious of my physical and mental existence. I think over "who am I and where have I reached ?" I am a bubble of Consciousness. With the manifestation of Shabd, this Consciousness permeats in my body. With the manifestation of Shabd this Consciousness also manifests. So, this Consciousness is under the will of SHABD or the will of Lord. Under His will, this bubble of Consciousness dwells sometime in physical had sometime in mind, sometime in Sehasdal Kamal, sometime in Trikuti, sometime in Sunna-Mahasunna or Bhanwar-Gupha and sometime under His will it transcends upto Sat-Pad and dwells there. So, I have come to this Conclusion-who am I ? I am a Sentient Energy or a bubble of Consciousness, which manifests at the will of God or Supreme Sentient Energy. As and when, His will would wish, I shall merge in Him. The entire process of creation and destruction continues under His-will. The illusionary or deceitful intellect deluded me a lot. This intellect was the cause of my bondage. However, thi very intellect has removed my bondage. Now, I do not have any whim of transmigration. This creation in His process. The supermost Element is in motion and it continues. This commotion in the Super-Element creates, Sun, Moon, Stars, Universes, Gods, Goddesses, Brahma, Vishnu, Mahesh, region of Brahma, region of Vishnu and the region of Shiva and they all ultimately merge in Him. Now, if there is any transmigration it is only to the Supermost-Element and if it is not it too is not to that power. I was

simply over-powered by a whim about the cycle of transmigration. Guru did a great favour to me, by dispelling all my doubts and whims ; my struggle has come to an end and now I live in PEACE. My entire imaginary episode, which was a cause of my peacelessness has come to an end. But Sar-Bhedi-Pandit ji is still dominated by his mental creations. He is still deluded by Maya. This delusion of Maya is removed by a Sant-Sat. Guru provided he or the Supreme-Lord wills it so. I have realised, that whatever is hoppening, is not in our control. I would like to say, that, whatever I have said to you during the last four days, is also a Maya. To work as a Guru or to deliver sermons is also Maya and to listen sermons as a disciple is also Maya. But when, you realize the Truth about this entire spectacle within and without you are supposed to remain silent. All those who realised it become silent and I too have become silent now :—

"Silence has great meaning, the meanings
that canot be explained."

Now, I conclude my sermons on NAM-DAN and come down to the level of Consciousness of physical existence. I used to listen that saints have great power in them, and whatever they say happens. So, O ! SAR-BHEDI-Brahmin, I, from the core of my heart wish and shower my benediction upon you. "May this life of yours he successful. May you attain peace. May your whims and doubts vanish away." As far as possible try to spend your life doing good to others. Although, this is also Maya, yet in this realm of Maya around us we are obliged to do something. Wv are

bound to do this or that deed in this realm of Kal and Maya. So, to do good to others is better and to do good to your ownself is the best. I have changed your Gotra or lineage. In future your sons, grandsons and their generation would be known as Sar-Bhedi-Brahmins. You are your family would remain peaceful and happy. O ! Sa-Bhedi Pandit Ji whatever I have with me, I have given to you. Tomorrow at the auspicious time, according to your desire, I shall give you TOUCH. Thereafter I shall leave for Amritsar and you would be free to go to your home.

NECTAR OF BHAGAVADGITA

By

His Holiness

Hazur Manav Dayal Ji Maharaj

Dr. I. C. Sharma

INTRODUCTION TO XVI DISCOURSE

This discourse is devoted to the distinction between the saintly persons and the demonic persons. A person who follows Love, humility, truth and self-sacrifice, is a one who is divine and saintly, and who heads towards Dayal Desh in the region of Compassionate Supreme Lord where the aspirant is free from all the relativity of pleasure and pain, loss and gain, good and evil.

The religion of saints advocates that the saint and Faqir should not be influenced by ego and pride. One who is under the influence of these evils, who is jealous and vicious, always falls in the web of births and deaths. Again with this idea of the religion of Saints the Bhagavad Gita says :

"They indulge in that ambitions desire,
Which is most difficult to acquire ;
Being intoxicated in conceit,
They always stick to false prestige ;
Since they are with ignorace replete,
False notions and acts they always repeat."
"They suffer from worries all their life
Which continues like an eternal strife.
They consider the sensuous pleasures alone
To be find joy, Oh, dear Arjuna !"

DISCOURSE XVI

(1-2-3)

"Fearlessness and purity of mind,
With curiosity for true wisdom combined,
Self-control and brnevolence,
The study to remove ignorance,
Sacrifice and austerity
Conscience filled with purity,
Non-voilence, Truth and angerlessness
Self-sacrifice and peacefulness,
Non complaint and true compassion
For all creatures without reservation,
Freedom from sensuous attachment,
Softness and tender temperament,
Hesitation for unethical action,
Freedom from uncelled for ambition ;
Spiritual charm, forgiveness, courage end purification
Of external body and internal person,
Freedom from all kind of deception,
And also from self defication ;
All these are the attributes of those man,
Who are called divine, Arjun."

(4)

"Pride, conceit and deception,
Harsh speecn and indignation,
And ignorance in all men
Are demonic signs Oh, dear Arjun !"

(5)

"Oh ! you Pandav, listen to Me :
Divine nature sets one free ;

The demonic one does bondage breed ;
You have been born as divine indeed.
Hence you need not worry at all ;
You would be free from Karmic thrall."

(6)

"There are two categories of men
In this world Oh, dear Arjun I
One is the divine type indeed
The other i the demonic breed ;
I have explained in the first fully
Now the demonic will I tell thee."

(7)

"The persons with demonic disposition
In fact have no discrimination
Between attachment and non-attachment,
They have no purity nor moral development ;
Neither in word nor in deed
They ever practise truth indeed."

(8)

"The world they say has no base ;
That God exists, is not the case ;
It is finite and born of combination
Of the opposite trends of creation ;
Hence sensuous enjoyment alone
Is its purpose ever and anon."

(9)

"With such misconceived wrong notions,
Foolish and demonic persons
Are born for practising immoral action ;
Being always engaged in destruction
Of society and individual men,
They are always steeped in sin."

(10)

"They indulge in that imbitious desire,
Which is most difficult to acquire ;
Being intoxicated in conceit,
They always stick to false prestige;
Since they are with ignorance replete,
False notions and acts they always repeat!"

(11)

"They suffer from worries all their life
Which continues like and eternal strife.
They consider the sensuous pleasures alon
To be final joy, Oh, dear Arjun !"

(12)

"By numerous hopes and desires are they bound ;
In anger and sex they always abound ;
They indulge in greed and immoral action
For all kinds of sensual satisfaction."

(13)

"They always think in the following way
'I have achieved this ambition today ;
I will gain more and fulfil more desire ;
This is my wealth, more will I acquire."

(14)

"I have killed this enemy today
Many others again will I sway ;
I am God, I am the enjoyer,
All perfections did I acquire,
I am powerful to an excess
And live in perfect happiness."

(15)

"'I am so rich and so wealthy ;
I also have the largest family ;

Who else is comparable to me ?
I will perform Yajna and charity ;
I will have joy and satisfaction.'
He deludes himself with such ascertion."

(16)

"Those men who are under delusion,
Suffering from folly and confusion,
Indulge in sensuous objects all,
And in the worst hell do fall."

(17)

"Such men who suffer from conceit
And think that they are discrete,
Suffer from pride and intoxication
Of wealth and ostentation ;
They perform Yajnas nominally
Transgressing all propriety."

(18)

"Such men blinded with ego and pride
Who always in sex and anger abide,
And who indulge in scandal and blame
Do ever insult My sacred name,
Even though I am all the same
Present in every physical frame."

(19)

"Such jealous, vicious, sinful men
I have always to condemn
In such a way that again and again
These person meanest birth retain."

(20)

"Those fools thus again and again
Always demonic birth retain ;

They always fail to attain My state
And hence their downward fall is great."

(21)

"Indulgence in sex, anger and greed
Would no doubt always lead
A soul to fall and to destruction ;
These three vices in conjunction
Are the three gates to hell ;
Henca Oh ! Arjun, I have to tell
You to be free from all the three
So that you may come to Me."

(22)

"Oh ! Arjun, one who is free
From all these vices three
Is the man who is really great,
Striving for that spiritual state
Which is no doubt the Ultimate bliss
And which he does never miss."

(23)

"One who neglects the Vedic mandate
And behaves in every state
According to his whimsical mind,
Would never perfection find ;
Neither will he get the Ultimate,
Nor pleasure at empirical state."

(24)

"The Vedic science would decide
And thus give you the proper guide
To what is wrong and what is right
Thus making your path bright.
Hence you should act in such a way
That makes the Vedic mandate sway."

Monthly Message

OF

H. H. Param Sant
Hazur Manav Dayal Ji Maharaj
Dr. I. C. Sharma

My dearest Satsangees,

Radhaswami and Blessings of the Supreme Compassionate Lord !

I couldn't give you any information, after my return from my foreign tour in the message of the last month. I told you in the message for the month of March 1986 that after arriving in Delhi from U.S.A. on the 14th December 1985. I arrived in Hoshiarpur the same day and returned to Delhi on the 16th Dec. 1985 by Rail road after delivering my monthly discourse in Hoshiarpur on 15th December '85. We boarded the train for Hanamkunda Andhra Pradest at 2-30 P.M. on the 16th December. We did so because I had to preside over the Diamond Jubilee Session of the All India Philosophical Congress which was to be held from 19th to 23rd December '85 in the Central University of Hyderabad.

All India Philosophical Congress was established in 1925 on the initiative of Dr. Radha Krishnan the noted philosopher of India and the President of our country. The first session of this organization was presided over by Dr Sir Ravindra Nath Tagore. Almost all the leading professors and writers of philosophy are the members of this organization. Many times the philosophers from west and other Asian countries also participate in the deliberations of this Congress. In every annual conference of this organization the philosophers present the research papers on different topics of philosophy and try to throw new light on the subject. The topics covered by them include the philosophy of the Vedas, the Upanishadas, the Bhagavad Gita and comparative religions. I have continued to be the member of this organization since 1950. Being a professor and author of philosophy I have been participating and contributing my suite in the development of this institution.

Dr. S. Radha Krishnan the then Ambassador of India to U.S.S.R. presided over the Silver Jubilee Session of 1950. The Golden Jubilee of the Congress was held in Delhi in which a large number of foreign philosophers participated inthusiatically.

I had been unanimously elected as the President of this Diamond Jubilee Session in 1984 at Jabalpur in the 59th session of the Indian Philosophical Congress. Therefore I arrived in Secundrabad to fulfill this committment on 17th Dec. 1985 alongwith my wife Mrs. Bhagya Sharma, Mr. S. L. Sethi my Secretary, Achary Shri K. P. Varma, Acharya Shri Shabdanand

and Miss Sadhana Saxena, Principal of Shivdev Rao Centre of Children's Education, Manavta Mandir, Hoshiarpur. The inaugural function of this session was held in the morning of 19th Dec. 1985. Mr. Rajiv Gandhi the Prime Minister of India was present with me on the stage to deliver the inaugural addeess. Besides him, Mr. N. T. Rama Rao the Chief Minister of Andhra Pradesh and Miss Kumad Ben Joshi the Governor of Andhra Pradesh were also sitting close to me. Mr. Rajiv Gandhi's address was impressive. One of the salient features of his speech was the question of integration of the modern scientific and technological approach with philosophy in such a way that India should forge ahead economically and industrially without losing her cultural uniqueness. Woundered how could this be achieved, and expected the philosophers to tackle this problem. I appreciated his ideas because in my Presidential address, which I had got printed before hand, I had dilated on this very problem in detail and pointed out Indian philosophy alone can lead the world in this direction by synthesizing spiritual values and material progress and by integrating Science, Philosophy and Religion. I presented a copy of this Address to Shri Rajiv Gandhi with my blessings especially because it contained solution to most of the problems raised in his inaugural address I also expressed thanks to him alongwith my blessings in my Presidential speech.

I presided over all the sessions of the Congress from 19th to 23rd Dec. '85 especially emphasising that the comprehensive philosophy of saints propounded

and [preached by two great contemporary saints Maharishi Shiv Brat Lal Ji Verman and Param Dayal Faqir Chand Ji Maharaj could offer guide lines in solving various philosophical problems which vexed the philosophers all over the world. It was gratifying to note that not only the philosophers of India and Asia but even those of Europe and America enthusiastically participated in the discussions and were impressed by the humanistic approach to philosophy and religion emphasised by me in all the general sessions of the Congress.

I mention all this to you beeause my Supreme Master Param Dayal Ji Maharaj had emphasised in his letters and lectures, especially during his last years of life, that the Manavta Dharma would be hailed by the intellectuals of world as the harbinger of peace and harmony in the world. What ever he said is being confirmed in my tours and participation in the conferences and seminars in India and abroad. In my last monthly message I had quoted a letter from Param Dayal Ji Maharaj and had told you how his ideas have been helping in fulfilling my duties in this direction. It looks that the truth of the religion of Humanity is taking roots automatically everywhere in the four corners of the world. It is flowing like the pure water of Ganges quenching the spiritual thirst of humanity in the East and the West.

My dearest Satsangees, I think that your love, devotion and faith in Param Dayal Ji Maharaj are inspiring me to accomplish my Mission successfully. I had also indicates before that whenever I write the monthly message and address you in these lines, I feel

as if I am talking face to face with you. I have full faith that you also feel the same way. I have been told by many of you that you await this monthly message anxiously every month and feel rejoiced in reading it I sincerely desire that this monthly message should help you make progress in your worldly life and finally aid you in attaining spiritual pesfection.

Last time I could not dilate upon the topic of austerity (Tapasya) on account of shortage of time and space, nor could I give details of my tour etc In this message I would like to say a few words about the of austerity before giving the details about the tour. In fact austerity (Tapas) is a discipline which integrated our body and mind and makes them healthy and pure. As long as body is healthy, we can perform duty and practice virtue. Even in the religion of saints it has been suggested that one should take care of his physical health. Param Dayal Ji Mah raj considered the physical austerity of celebasy of contene ce as most important for the aspirent. In many of his discourses he has proved that a person who loses his simen at an early age and cannot contain himself from indulgence in sex, loses strength and energy so that he falls victim to terrible diseases in his later life and also remains mentally disturbed. Therefore he has applended physical and mental celebasy as austerity. Before I explain to you the physical, mental and verbal austerities, I wonld like to say something in details about the austerity of celebasy in this message.

The religion of saints is not ascetic in nature, because it is an easy path. Its approach is spontaneous

and it emphasis the enjoyment and experience of Love in the household emphasising at the same time that one can make progress in spiritual life by retaining to lose his sexual energy through over-indulgence. In almost all the religions non-violence and celebasy have been advocated as the pathway to God. They are the most essential virtues for attaining spiritual perfection. In Indian culture, especially in the Eternal religion (Sanatna Dharma) four stages of life (Ashramas) have been prescribed as a discipline with a view to living about the integrated development of the physical, mental, intellectual and spiritual aspects of the human personality. These four Ashramas are :

(i) Studentship (Brahmacharya) celebasy.

(ii) House-holder's stage or married stage.

(iii) Anchorite (Vaanaprastha).

and (iv) Renunciate (Sannyaas).

The first twenty five years devoted to the discipline of celibacy lead to healthy body and the conversation of physical energy an individual can live a full life of hundred years. In the ancient times every person would live with his preceptor in the Ashrama from age 9 to 25 years There he would observe celibacy and get educated, as a result of which he would become capable of entering into occupation. Such an education would develop his mind and make him a worthy person because of the humility of knowledge. This worthiness would make him capable of earning wealth, one of the first four values of life. By earning wealth he would be able to fulfill his desires including satisfaction of sex through love, and would thus be able to perform

his ethical duties towards his family and the society. A sage has stated this very idea in the following manner, "Learning gives humility ; humility makes a person worthy ; worthiness enables him to attain wealth ; wealth makes him capable of performing ethical duties which brings happiness." That is only Param Dayal Ji Maharaj has emphasized the necessity of becoming financially self dependant before turning towards spirituality again and again in his teachings. He exhorted many times that one should first devote one's attention to one's profession and occupation. The special characteristic of the religion of saints is that the Master who guides the disciples should be financially independent and not in the least lean on the donations of his disciples. This is indicative of the fact that it is necessary to observe the discipline of celibacy for worldly pleasure and for getting education which makes a person earn well, follow virtue and ultimately attain happiness. In other words by the observance of the discipline of celibacy the family-life becomes peaceful and happy. Not only this, but by practising virtue in family-life one also advances towards spiritual perfection and after attaining happiness here, he also attains Bliss hereafter. The Sanatna Dharma—the Eternal religion—and the religion of saints agree on this point. Just as the worldly as well as other worldly attainments become possible by the observance of the first stage of celibacy according to Sanatana Dharma, similarl the religion of Saints also educates that the only happiness depends upon the observance of continence. Not only this, but it also enjoins that even spiritual perfection depends on this

discipline. Param Dayal Ji Maharaj stated on the basis of his own experience that a person who loses his sexual energy by over-indulgence before maturity, is not able to experience light—the giver of Bliss. But if that person practices this discipline later on under the guidance of a Perfect Master, he would also be able to experience light. Thus according to the religion of saints success here, and the life eternal hereafter, both are attainable by the observance of the discipline of celibacy. In my next monthly message I would like to explain how the discipline of continence is of great help in practising the three-fold technique of the repetition of the Name of God, the attention to light within and experiencing inner Sound.

I would now like to give some details about my tour during the months of December 1985 and January 1986. After the last session of the Diamond Jubilee of the Indian Philosophical Congress on the 23rd Dec. 1985, we left Hyderabad at 5 P.M. and arrived in Hanamkunda at 9 P.M. by the motor car provided by Mr. Narsimha Vyas, S/o Shri Madan Lal Vyas of Hyderebad. After delivering two satsengs in Hanamkunda on 24th December, in which the satsangis of Varangal and vicinity also participated, we proceeded to Hazurabad where we stayed for one night and next day we went to Karim Nagar On the 27th December we proceeded to Balar Shaw by train and arrived there very early morning on the 28th December Shri Kamaleswar Rao and his associates were present at Balar Shaw Rly Station to take us to Aheri. They had arranged for three cars. After a short stay and refreshment at Balar Shaw. We headed towards Aheri

the same morning. I had also mentioned previously that the residents of Aheri are very simple-minded and full of devotion and love. Aheri was a princely state before tne independence of India. Acharya Kamleswar Rao established International Manavta Society in 1984 and had also planned to build Manavta Mandir in the town. It was a pleasure to note that the organizers in Aheri had taken steps to fulfill this mission.

A large number of satsangis were awaiting to receive us about a mile away from the town. They walked the whole distance in a procession and took us to the vennu of Satsanga. Here we had the good news that a young scoin of the Royal family of Aheei Prince Shri Dharma Rao had donated about two thousand square yards of land for the construction of Manavta Mandir. He himself met me and attended the spirieual discourses with reverence and devotion. The satsangis in Aheti attended by thousands of satsangis were fruitful. I wish to say that the spiritual current flowed so spontaneously during that satsangs that I myself felt as if I was in a trance. The credit of this goes to Acharya Shabdanand and Km. Sadhna Saxena because the verses they recited touched the souls of everyone and gave me special inspiration. These persons, Shri K. P. Verma as well as Shri S. L. Sethi are helping me in accomplishing this mission alongwith my life-partner Smt. Bhagya Sharma. I wish them all health happiness and harmony.

During the three days of Satsang in Aheri some-other events also took place. The very next day I laid down the foundation stone of Manavta Mandir in the presence of the satsangis. On the same day I was also

required to perform the opening ceremony of a new Video Cinema started by Prince Dharma Rao. An inscribed marble stone was inlaid on the front side of the building recording this event. I am giving you these details to remind you that the three-fold activities which we had pledged to carry on during the year 1985-86 to commemorate the centenary of Param Dayal Ji Maharaj, are being carried on in India as well as abroad. These threefold activities are :

(i) Publication of the Centenary Memorial Volume.

(ii) The holding of spiritual discourses and Conferences all over the world.

and (iii) Establishing Manavta centres in new places.

It should be remembered that the Manavta Mandir, Hoshiarpur, which is the centre of propogation of Truth, does not over-lord any centre outside Hoshiarpur. Wherever these centres have been opened, the entire management has been left to local organizers. Param Dayal Ji Maharaj had stated that our centres would not be imperialistic or capitalistic in the sense of owning huge buildings and property. Our relation with all the centres is that of love and cooperation. The centres are needed for the benefit of local satsangis so that they may get together and benefit from spiritual discourses regularly.

Having accomplished our mission in Aheri we proceeded to Itarsi from Balarshah railway station by train at 5 A.M. on the New Year day, i.e. 1st January 1986. In Itarsi Shri Jogendra Singh, a great devotee of Param Dayal Ji Maharaj, had started the series of

visits and satsangs of Param Dayal Ji Maharaj long ago. Now his own Shri Charan Jeet Singh runs the Punjab Cycle Stores and has taken over the duties of his worthy father Jogendra Singh who has now retired from active life. The Singh family were the stamp of the teachings and ideals of Humanism as preached and propounded by Param Dayal Ji Maharaj. It is truly a humanistic family. As already stated, there are hundreds of satsangis in Itarsi who originally hail from Sind in Pakistan. Similar is the case with Katni an adjoining city in Madhya Pradesh. One of the families who are meticulously following the teachings of Manavta and are devotees of Param Dayal Ji Maharaj is the family of Shri Heman Dass. Similarly the families Seth Arjun Dass and Seth Raju Mal of Khatri are the ideal families. Shri Vishnu Merchant, the youngest son of Shri Heman Dass is an ideal young man who is fulfilling the committments of his father Late Shri Heman Dass to Manavta Mandir and to Manavta movement. He came all the way to Itarsi and joined us during our three days stay there. Two discourses were held at the residence of the devoted satsangee Shri Sunder Dass. Love, faith and conviction characterise the families of the satsangis of Itarsi.

I regret to stop here so far as the information of tour is concerned in the monthly message. The further information will be provided to you in the next message. One of the satsangis told me that everyone awaits the information of the tour in the Monthly Message very anxiously He insisted that the tour information be published during the same month or at least a month later than the actual dates. I replied to him stating

that such an arrangement would not be possible, the reason being that the information cannot be reduced to writing till the tour has been actually undertaken. Besides this the monthly message contains spiritual guidance as well. Thus we have very little space for giving the details of the tour. You might have noticed that there was no space for tour information in the special Baisakhi adition of Manav Mandir. However, we were thinking of improving upon the situation. We may separate the tour-informati'n and publish it in the form of Tour Diary which will be compiled by one of the persons who accompany me on the tour. In this way we shall be able to give you more and uptodate information as well as maintain the standard of conveying spiritual message under the caption "Monthly Message."

With these words I wish you all a happy, healthy, holy and harmonious life during the current month. With my sincerest love, blessings and Radhaswami.

Yonrs in Faqir
Manav.

प्रार्थना

राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।
अलख अगम और अनामी।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।
परम, सन्त का रूप धरा, जीवों पर उपकार किया।
सीधा सच्चा मार्ग दिया, आये धुर पद धामी।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।
बन कर आये परम फ़कीर, हरने सब जीवों की पीर।
परम दयालु दानी वीर, नाम दान के दानी।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।
राम भी हो और कृष्ण भी तुम।
तुम महावीर और बुद्ध गौतम।
अक्षर ब्रह्म और पुरुषोत्तम, सब नामों में अनामी।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।
मानवता का किया प्रचार, निज अनुभव का दे दिया सार।
ऐसे गुरु को बारम्बार, नमामि नमामि नमामि।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।
दाता दयाल के प्यारे तुम मानव के रखवारे तुम।
निर्गुण और सगुण भी तुम, सब के अन्तर्यामी।
राधास्वामी, राधास्वामी, राधास्वामी।

Regd. No. 26965/74 MAY 10th 1986

MANAV MANDIR NWHSP—7

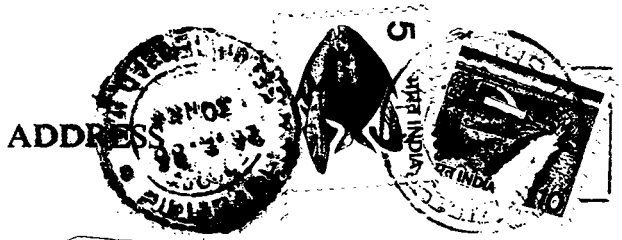

ADDRESS

72. Sh. Anand Rao Jl
H. No. 1-3-17 Kalasi Gudda
Near Laxmi Narain Mandir
Secunderabad A. P.

Phone : 2022

From :

MANAVTA MANDIR
SUTEHRI ROAD,
HOSHIARPUR-146001

Shiv Dev Rao Press Manavata Mandir, Hoshiarpur (Pb.)